अध्याय तृतीय

समकालीन हिन्दी कहानियों में स्त्री दृष्टि का विकास

(क) पुरुषों द्वारा लिखित कहानियाँ

समकालीन पुरुष कहानीकारों में मिथिलेश्वर, जयनंद, एस.आर. हरनोट, अमरीक सिंह दीप, दिनेश पालीवाल, शैलेष मटियानी, नरेश पण्डित, विष्णु प्रभाकर, श्योराज सिंह बेचैन, प्रदीप पंत, कृष्ण राघव, कृष्ण बिहारी, अशोक गुप्ता, शैलेन्द्र सागर, उदय प्रकाश रत्न, चंदन पाण्डेय, कुणाल सिंह, राजेन्द्र कुमार कनौजिया, संजय कुन्दन, शशिभूषण द्विवेदी, प्रभात कुमार सांझरिया, आलम शाह खान, गौरी नाथ, तेजेन्दर शर्मा, पंकज मित्र, विमलेश त्रिपाठी, नवनीत मिश्र आदि का नाम उल्लेखनीय है।

स्त्री को केन्द्र में रखकर बात करना हिन्दी कथा साहित्य की एक बड़ी विशेषता है। कथाकारों ने प्रायः स्त्री समस्याओं के बारे में अधिक बात की है। नारी मनुष्य जीवन का प्रधान अंग है। ईश्वर ने नारी को सृजन शक्ति का वरदान देकर समाज के समाज के लिए उतना ही आवश्यक बना दिया जितना सृष्टि के लिए वह स्वयं आवश्यक है। लिहाजा साहित्य में भी उसकी अभिव्यक्ति होना स्वाभाविक ही है क्योंकि साहित्य का प्राण जीवन है और स्त्री जीवन की प्राणदायिनी शक्ति।

पुरुष कथाकारों ने तो नारी–स्थिति को कल्पित कर लेखनों के माध्यम से उसके दुःख–दर्द को अभिव्यंजित करने की कोशिश की है लेकिन, महिला कथाकारों ने तो उन स्थितियों को स्वयं भोगा है इसलिए इनके लेखनों में अनुभव और अनुभूतियों की एक विशिष्ट आँच है। वे नारी मन के अन्दर गहरों में पूरी तरह झाँककर पूर्ण अनछुई स्थितियाँ लाकर अपने लेखनों को नया निखार दे सकीं।

जगदीश्वर चतुर्वेदी लिखते हैं कि– ''औरत को मर्द बनाकर या उसमें मर्द के गुणों को पैदा करके मुक्ति नहीं दिलाई जा सकती स्त्री को मुक्ति का रास्ता स्त्री–चेतना को अर्जित करने की लड़ाई से जुड़ा है। औरत जब तक स्त्री–चेतना हासिल नहीं करती तब तक वह सामाजिक जीवन में स्वायत्त पहचान नहीं बना सकती। औरत राजनीतिक और आर्थिक अधिकार सम्पन्न हो और उसमें स्त्री चेतना का अभाव हो तो ऐसी औरत मर्द की अनुगामिनी ही रहेगी।''[1]

नयी भौतिकवादी दृष्टि एवं वैश्विक युग में स्त्री–पुरुषों के सम्बन्धों में जो भारी परिवर्तन हुआ है, वह भी आज के लेखन में महिला विषयक चिन्तन का मुख्य आधार रहा है। यह परिवर्तन न केवल वैज्ञानिक सम्बन्धों में अपितु विवाहेतर सम्बन्धों में भी स्पष्ट परिलक्षित है।

नारी जब रोजी–रोटी की तलाश में अथवा आर्थिक स्वतंत्रता के लिए घर से बाहर आयी तो उसके जीवन स्थितियों में बहुत अन्तर आ गया है। बदलते सामाजिक आर्थिक परिदृश्य में जो मौलिक परिवर्तन हुए हैं उसने हमारे आचरण को, हमारी दृष्टि को बदला है जिसे लेखनों के माध्यम से बखूबी अभिव्यक्त किया गया है।

''ज्यों–ज्यों स्त्री–चैतन्य होगी, शिक्षित होगी, प्रतिस्पर्धी होगी, उसके खतरे बढ़ेंगे। समाज उसे आगे कहाँ स्वीकार कर पाता है। समाज में स्त्री की प्रक्षेपित छवि ही उसकी वास्तविक इयत्ता को चुनौती दे रहा है। स्त्री की छवि को केवल मनोरंजन के ऑब्जेक्ट के रूप में दिखाया जा रहा है, फैशन चैनल, एम.टी.वी देखिये तो ऐसा कतई नहीं लगेगा कि उनमें काम करने वाली लड़कियाँ किसी जबरदस्ती की शिकार हैं।''[2]

नया युग अपने साथ नया जीवन बोध ही नहीं लाता, जीवन की समस्त सर्जनात्मक गतिविधि के नये रूप और प्रतिमान भी लाता है। जीवन और समाज के बुनियादी ढाँचे में परिवर्तन के साथ–साथ नये विचारों, मूल्यों की अभिव्यक्ति आज साहित्य लेखनों में होने लगी।

प्रभा खेतान लिखती हैं– ''मैं मानकर चलती हूँ कि स्त्री–लेखन और पुरुष लेखन में फर्क होता है और रहेगा क्योंकि स्त्री और पुरुष आज भी इस पितृसत्तात्मक समाज में जैविक, आर्थिक, सामाजिक धरातल पर भिन्न हैं .... कुछ अनुभव जरूर ऐसे हैं जिन्हें केवल एक भुक्तभोगी ही अभिव्यक्त कर सकता है, क्योंकि जो दलित हैं, शोषित हैं, वे ही जानते हें शोषण की त्रासदी किसको कहते हैं।''[3]

भोगे गये यथार्थ को कथा–साहित्य में उसी गहराई से सम्प्रेषित करने के क्रम में पुरुष कथाकार भी स्त्री के अस्तित्वगत प्रहार को, उसके खरोचों को, उसके दर्द को सकारात्मक दृष्टि से देखते हैं। जो सामाजिक मूल्य और संवेदना के पक्ष में है। कहीं–कहीं पर स्त्री व पुरुष कथाकारों में मतभेद की स्थिति भी पैदा हो जाती है। स्त्री–जीवन के यथार्थ को समझने में मदद मिलती है।

''पुरुष कहानीकारों से महिला कहानीकारों को अलग करने का एक अलग मापदंड है और यह है– अकेलेपन का बोध, बोरियत और बिखराव का बोध, मातृत्व के प्रति नया दृष्टिकोण, संयुक्त परिवार का विघटन, नैतिकता के प्रति नया दृष्टिकोण, रोमांटिक बोध और उससे मोहभंग। नारी का स्वतंत्र व्यक्तित्व संबंध विशेष दृष्टिकोण आज तक जिस तेजी से परिवर्तन होता जा रहा है तो अकेलेपन का बोध भी खटकने लगा है।''[4]

कहानी अपने बहुआयामी संदर्भों और आयामों में आज मात्र एक ललित विधा नहीं रह गयी है अपितु एक गंभीर बौद्धिक विमर्श की विधा है। यह गंभीर बौद्धिक विमर्श इसलिए संभव और जरूरी हुआ कि भूमण्डलीकरण के तहत एक विश्वग्राम, ग्लोबलीय विलेज की परिकल्पना ने मुक्त बाजार और उपभोक्तावादी संस्कृति को बढ़ावा दिया कि हम अपसंस्कृति के हमले से घबरा उठे और उससे बचाव के, अपने श्रेष्ठ मूल्यों की रक्षा के प्रयत्न शब्द में तलाशने लगे।

''पुरुष लेखकों ने भी स्त्रीपक्षीय मूल्यों का विकास किया है पर नारी–विरोधी उनका सारा साहित्य समरूप नहीं है। कई असावधान लेखक भी हुए और स्त्री कई

सहानुभूति लेखक भी हुए। पुरुष लेखन कितनी भी संवेदनशीलता दिखाये, स्त्री के पक्ष में लेखन पुरुष का आदर्शवाद है जबकि अपने पक्ष में स्त्री का लेखन उसका यथार्थवाद है।''[5]

समाज में स्त्री के स्थान की ओर संकेत करते हुए शिव प्रसाद गुप्त लिखते हैं– ''मैं पुरुष और स्त्री में कोई भेद साधारण रूप में नहीं मानता। वैसे तो प्रकृति ने इन दोनों में कुछ अन्तर बनाया ही है, जिसकी उपेक्षा कोई भी विचारवान व्यक्ति नहीं कर सकता। आजकल इस सत्य की आड़ लेकर नाना प्रकार की कृत्रिम दीवारें पुरुष और स्त्री के बीच में खींचने का यत्न किया जाता है, जिसका मैं अपने को विरोधी मानता हूँ। यह सत्य है कि स्त्री को सन्तति उत्पन्न करने और उसका लालन–पालन करने में अपने जीवन का अधिक समय लगाना पड़ता है और यही कारण है कि माता का स्थान समाज में पिता के स्थान से बहुत ऊँचा समझा जाता रहा है और आज भी समझा जाता है। अपने देश में तो यह समझा जाता है कि व्यक्ति पितृऋण से तो मुक्त हो सकता है, पर मातृऋण से छुटकारा नहीं पा सकता।''[6]

''समकालीन कहानीकार के लिए स्त्री देवी, माँ, सहचरी, प्राण न होकर एक प्रतिद्वन्द्वी है। वह सेक्स सम्बन्धों में जंतु–तर्क को मानता है और सारे नैतिक मूल्यों पर प्रश्नचिन्ह लगा देता है। स्त्री और पुरुष के बीच सारी नैतिक मान्यताओं और मूल्यों से ऊपर जैविक स्तर का शारीरिक सम्बन्ध एक अनिवार्य तथ्य है।''[7]

डॉ. रमेश कुन्तल मेघ लिखते हैं– ''आजकल नारी की ऐतिहासिक कर्म भूमिकाएँ– गृहिणी, धाती, जननी उपचारिका, सेविका, दासी आदि जो शय्या और रसोई की धुरी में केन्द्रित थी, अब बदल रही है। वह गृह से बाहर और अन्दर दोनों क्षेत्रों में धन्धों को अपना रही है और गृह की धुरी के ढीला होने के साथ 'विवाह–संस्था' के अस्तित्व पर भी प्रश्न उठ रहे हैं अर्थात् सामंती आधार टूट रहे हैं।''[8]

'शोध–प्रबंध' कहानी एक लड़की को पी०एच०डी० कराने के बहाने व्यभिचार करते प्रोफेसर के चरित्र को व्यक्त करती है। 'रीना' को पी–एच०डी० की डिग्री जल्दी से जल्दी पूरा करा देने और उसे एक प्रसिद्ध लेखिका बना देने का भावनात्मक मुद्दा

उठाकर प्रोफेसर उसके साथ बार–बार शारीरिक सम्बन्ध बनाता है। रीना गर्भवती हो जाती है। रीना यह बात जब अपनी सहेली को बताती है तो उसकी सहेली उसे राय देती है– ''क्या प्रबंध–प्रबंध की रट लगाये जा रही है, असली प्रबंध तो तेरे पेट में तैयार कर दिया है प्रोफेसर ने, परन्तु अब तू अपना फैसला सुना। तू अब उससे शादी करके उसके साथ रहना चाहती है या घटना को छिपाना चाहती है।''[9]

स्त्री लेखन में मुक्ति का मार्ग तलाशती समकालीन स्त्री–जीवन के विविध पहलुओं को परत दर परत उकेरती है। शिक्षा मुक्ति और स्वाधीनता का प्रवेश द्वार है। समकालीन दौर में सुशिक्षित, कामकाजी, नौकरी करने वाली, अधिकार–सजग और बौद्धिक स्त्रियों ने आज से समता, सहभागिता, परम्परावलंबन की माँग कर रही है।

''भारतीय समाज की संरचना में स्त्री की सारी घोषित समानता एवं स्वतंत्रता के बावजूद कुछ ऐसी मूलभूत विसंगतियाँ हैं जो उसके अनुभव विस्तार की संभावनाओं को बाधित करती है। उनके जीवन में प्रेम, विवाह और गृहस्थ की समस्याएँ आज भी महत्वहीन नहीं हो गई हैं। पढ़ी–लिखी, नौकरी पेशा और अभिजात वर्गीय स्त्रियाँ भी एक ऐसी सुरंग में बंद हैं जिसे बाहर आने की कसमसाहट और जद्दोजेहद ही उनके जीवन की सबसे बड़ी वास्तविकता है।''[10]

अमरीक सिंह दीप की कहानी 'सिर फोड़ती चिड़ियाँ' में दहेज की समस्या को बड़ी जीवंतता के साथ व्यक्त किया गया है। इस कहानी में 'अनन्या' एक पढ़ी–लिखी लड़की है जिसकी शादी के लिए उसके जीजाजी इधर–उधर भटकते हैं। कहीं कोई कार माँगता है, कोई स्कूटर तो कोई ढेर सारे रुपये। आखिर में शादी 50 हजार रुपये और एक स्कूटर में तय होती है। अपनी शादी की सौदेबाजी सुनकर अनन्या कहती है– ''क्या समझ रखा है आप लोगों ने मुझे? भेड़, बकरी या गाय? किस बात के 50 हजार रुपये दे रहे हैं आप उन्हें? .... एक बात कान खोलकर सुन लीजिए आप सब, मैं इंसान हूँ इंसान कोई बेची या खरीदी जाने वाली वस्तु नहीं। मुझे बेचने या खरीदने का अधिकार किसी को भी नहीं है।''[11]

समकालीन हिन्दी कहानी जीवन के अन्तर्विरोधों, तनावों और विरोधाभासों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति प्रस्तुत कर रही है। किन्तु अब बहुत कुछ बदल गया है। अब स्त्रियाँ भी आगे बढ़ने के लिए सारी कोशिशों में जुटी हैं। शिक्षा से लेकर बाहर रोजगार तक करने के लिए निकलने लगी हैं। उन्हें अब स्वतंत्रता और समानता की बात आने लगी है इसलिए स्त्री को भी अब बहुत दिनों तक दबाया नहीं जा सकता। इसलिए आज वे प्रश्न पूछ रही हैं, जो युगों–युगों से उसकी माताओं, दादियों–नानियों के सीने में दफन पड़े रहे हैं। गरीब औरत की हालत तो और बदतर होती है जब उसका अस्तित्व बोध ही बदल दिया जाय तो उसकी मनोदशा कैसी होगी।

फ्रेडरिक एंगेल्स ने लिखा है– ''मातृसत्ता का विनाश नारी जाति की विश्व ऐतिहासिक महत्व की पराजय भी। अब घर के अंदर भी पुरुष ने अपना अधिकार जमा लिया। नारी पदच्युत कर दी गई। वह जकड़ दी गई। वह पुरुष की वासना की दासी, संतान उत्पन्न करने का एक यंत्र मात्र बनकर रह गई। बाद में धीरे–धीरे तरह–तरह के आवरणों से ढककर, सजाकर और आंशिक रूप से थोड़ी नरम शक्ल देकर उसे पेश किया जाने लगा, पर वह कभी दूर नहीं हुई।''[12]

शैलेष मटियानी की कहानी 'माता' से स्पष्ट किया जा सकता है। गरीबी के दंश को झेलती हुई 'पार्वती' की कहानी है। जो सन्यासी जीवन को चुनने के लिए मजबूर हो जाती है। पार्वती की शादी दहेज की वजह से नहीं हो पाती क्योंकि उसका बाप इसे देने में असमर्थ है। इसी तरह होते–जाते उसकी (पार्वती) उम्र निकल जाती है और वह संन्यासी बन जाती है। उसके मन में एक नारी के सहज भाव हैं जो इस तरह से व्यक्त होते हैं– ''कुछ क्षणों को वह भगवान नांदेश्वर के मंदिर की ओर एकटक देखती रह गई। उसे एकाएक ही हुआ कि मिहलगाँव को लेकर उसे एकाएक ऐसी स्मृति क्यों हुई होगी कि वह मायके का गाँव है। मायका तो तब होता है, जब कहीं ससुराल का अस्तित्व हो? सन्यासिनी की ससुराल ही नहीं तो, फिर मायका भी कहाँ होगा?''[13]

''स्त्री की जिंदगी के बारे में पुरुष लेखन ज्यादा से ज्यादा अर्द्धसत्य का ही दावा कर सकता है। पुरुष की यह कैसी अजीब दुर्भावना है कि परंपरा से मिले हुए ज्ञान में उसकी यह इच्छा छुपी हुई है कि स्त्री–वर्ग पर वह जैसे–तैसे अपना वर्चस्व बनाये रखे। स्त्री के शोषण–उत्पीड़न पर चर्चा की गई, आँसू बहाये गये, मगर समाज की इस भेदभाव वाली संरचना के विकल्प में बिल्कुल नहीं सोचा गया। या फिर येन–केन प्रकारेण कुछेक लेखिकाओं को बहला–फुसलाकर, थोड़ी–बहुत सहूलियत देकर, अपवाद स्वरूप एक–दो को अपने समकक्ष बैठाकर बाकी सबको तिरस्कृत कर दिया।''[14]

लेखिका का मानना है कि जिस गहराई में जाकर स्त्री अपने जीवन की यंत्रणाओं की अभिव्यक्ति देती है, वैसा पुरुषों के लिए सम्भव नहीं है। आज हम 21वीं शताब्दी में पहुँच जाने के बाद भी समाज में वेश्यावृत्ति जैसी घिनौनी आदत से बाज नहीं आते। पुरुषों ने आज भी स्त्रियों के यौन–शोषण को आधुनिक युग के रूप में परिवर्तित कर उस पुरानी परम्परा को हाईटेक बना दिया। अब वह कालगर्ल के नाम से जाने जानी लगी।

कृष्ण राघव 'काशी का बनारस' कहानी का संदर्भ लिया जा सकता है। इस कहानी की 'काशी' वेश्या होते हुए भी मानवतावादी गुणों युक्त है। वह वेश्यावृत्ति के गंदे काम में धोखाधड़ी का शिकार हो जाती है। उसके बच्चे भी हैं लेकिन उन पर इस धंधे का साया न पड़े उनका एडमिशन बोर्डिंग स्कूल में करवाती है। एडमिशन के समय बच्चों के बाप का नाम पूछे जाने पर वह रमेश नाम बताती है। रमेश जो किसी नौकरी ट्रेनिंग के समय बनारस आया हुआ था जिसकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी वह उसकी मदद करती है। एक दिन जब उसे अपने बच्चों की याद आती है तो कहती है–

''दोनों बच्चे बोर्डिंग में चले गए।''

''मेरे बच्चे मुझसे दूर हो गए।''

अच्छा तो किया इस जगह से तो दूर रहेंगे।

'वोइच' मेरी यह बात उसे भा गई।

झट आँसू पोंछकर कहने लगी– ''चाहे कितनी बी याद आये उन्हें यहाँ नई लाएगी, मैं इच जाएगी उनसे मिलने।''[15]

हणमंत राव पाटिल कहते हैं– ''स्त्री विमर्श एक ऐसा विचारों का रूप है, जो स्त्रियों को उसकी परंपरागत भूमिका से हटाकर उसके स्वतंत्र अस्तित्व की पहचान कराता है। अन्याय, अत्याचार, शोषण के विरुद्ध संघर्ष कराता है, स्त्री सामर्थ्य की खोज एवं पहचान कराता है। स्त्री की मानसिकता में परिवर्तन कराता है तथा उसे एक नई दिशा प्रदान करता है। साहित्य में स्त्री–विमर्श एक मानवीय दृष्टि है जो स्त्री–पुरुष भेद मिटाकर दोनों में प्रतिष्ठा की समानता लाने की बात करता है।''[16]

यह एक स्वाभिमानी नारी की कहानी है। 'ऋता' पर्यटन विभाग की डायरेक्टर है। वह दुर्गम पहाड़ियों का सफर अकेले तय करना पसंद करती है। कभी–कभी मार्ग भूल जाने की स्थिति में उसके कर्मचारी उसकी मदद करना चाहते हैं लेकिन वह मना कर देती है और बड़े स्वाभिमान के साथ कहती है– ''आपको यह कहने का साहस कैसे हुआ कि मैं थक जाऊँगी, क्या मैं नारी हूँ इसलिए? क्या समझ रखा है आपने नारी को? जाइए, जाइए आप अपने टट्टू पर सवार होकर जाइए। आप मेरी इच्छाशक्ति को कमजोर करना चाहते हैं।''[17]

''एक औरत होने के नाते ही एक औरत साहित्यकार स्वानुभवों पर आधारित होकर अपने खुद के दृष्टिकोण से अधिक प्रामाणिक, अधिक विश्वसनीय साहित्य रचने लगी। भले कई पुरुषों ने भी संवेदना के बल पर सहानुभूति के नाते उसकी पीड़ा को व्यक्त किया है पर वह औरत की तरह अनुभवजन्य और प्रामाणिक नहीं हो सकता।''[18]

'प्रदूषण' इस कहानी में स्त्री–पुरुष की चरित्रहीनता पर प्रकाश डाला गया है। ''अपने प्रिय हीरो धर्मेन्द्र की तरह संतोष के चौड़े सीने और वैसे ही मछली की तरह

उभार वाली मजबूत बांहों की गिरफ्त में धीरे–धीरे वह बेसुध होती चली गई। उसी हाल में उसने 'छोड़िए' तो कहा था, पर उस शब्द में विरोध का सामर्थ्य नहीं बचा था और उसकी आँखें मुँदती चली गई थी ..... संतोष के लौटने की इस संभावना से जहाँ एक तरफ वह डर रही थी, वहीं मछली की तरह छटपटाती हुई उसकी प्रतीक्षा में बेकरार थी।''[19] ''निश्चय ही यह कहानी नारी के उस मनोविज्ञान अर्थात् पुरुष भय को रेखांकित करती है, जिसके कारण मनुष्य अपनी भावनाओं को क्रिया रूप में परिणत नहीं कर पाता। 'प्रदूषण' शरीर सुख के भटकाव की बहती प्रवृत्ति तथा उस प्रवृत्ति के दमन को रेखांकित करती है।''[20]

''समकालीन हिन्दी कहानीकार छटपटाता हुआ चतुर्दिक प्रहार कर रहा है। उसकी विरोध की भावना व्यक्तिगत स्तर की भी है और सामूहिक स्तर की भी ...... वह व्यक्ति के प्रति भी विरोध कर रहा है और समूह के प्रति भी। वैयक्तिक स्तर के विरोध में सर्वप्रमुख है सेक्स सम्बन्धों का क्षेत्र।''[21]

'चट्टान' व्यभिचार के खिलाफ संघर्ष करती एक स्त्री की कहानी है जिसका पति तीन बच्चे होने के बाद भी पराई स्त्री से विवाह करना चाहता है। अपने पति को बहुत समझाने के बाद भी पराजित मनःस्थिति के कारण नायिका आत्महत्या कर लेती है– ''उस औरत ने आत्महत्या नहीं की उसने तो इस संसार से दूसरे लोक में प्रवेश किया। जिस तरह वह नई दुल्हन बनकर जजमान के घर आयी थी, ठीक उसी तरह दूसरे लोक में चली गई। इस जीवन में उसे सुख तो न मिल सका, शायद ऊपर मिल रहा हो।''[22]

''वह पहला अनुभव बड़ा ही दर्दनाक था। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि इतनी भारी कसरत को शारीरिक सुख क्यों कहा जाता है? कितनी कष्टकर होती है यह यात्रा लेकिन अपने प्रिय पुरुषत्व को समर्पित हो जाने की पुलक कुछ और ही होती है। पसीने से तर–बतर होकर हम सो गये सुख वगैरह तो मिला नहीं, कष्ट ही अधिक हुआ।''[23]

'जनरल वार्ड' मध्यकालीन तकियानूसी वैवाहिक मान्यता पति परायणता को व्यक्त करती है। नायिका के द्वारा खुद ही पुरुषवादी संवाद से इसकी पुष्टि हो जाती है– ''यही कि अब तुम्हीं सब कुछ हो। यह कि जिस घर डोली जाती है, लड़की की वहीं से अर्थी उठती है। यह भी कि मान–मर्यादा का हमेशा ख्याल रखना। सुख–दुःख जो मिले सब चुपचाप सहना कितने भी घाव लगें, कभी उफ़ मत करना। चुपचाप सहने का मतलब है जिन्दगी।''[24]

गौतम सॉयाल कहते हैं– ''नारी देवताओं का भोग है, नारी सामंतों का उपभोग हैं, नारी मध्यवर्ग का व्यायोग है, नारी सबअलटर्न का संयोग है– जैसे कारे राम रचि राखा! नारी कवियों का प्रयोग है चाहे वह नाक पोंछता छायावादी हो या लार टपकाता हालावादी। नारी विज्ञापन की गुड़िया है जो जैम, जेली, चॉकलेट, फॉयल से लेकर सेविंग ब्लेड की तेज धार पर नंगी लेटी होती है। नारी शील की पुड़िया है जिसे पति के अतिरिक्त किसी ने खोला कि जमीन पर गिरी, पतिता हो गई।''[25]

'देह भर नहीं' कहानी की माँ अपनी सांसारिक भावनाओं से घर–परिवार की जिम्मेदारी से तंग आकर बेचैन होती है। वह अपने नारी होने की निराशा को व्यक्त करती है। नारी को केवल आदर्श माँ, पत्नी, गृहिणी के नाम पर घर की चारदीवारी के अंदर बंद कर घर की स्वामिनी का स्वांग रचा जाता है। वह कहती है– ''मैं पहले जैसी नहीं रही। हाँ नहीं रह गई, पहले जैसा मुझमें अब है क्या? जब मेरा अपना आप ही नहीं रह गया, तब पहले जैसा और क्या रहता? ये मेरे पति हैं इसलिए इनकी पत्नी हूँ मैं। इनके बच्चे की माँ हूँ, इसलिए बेटू की माँ हूँ मैं और इन्हीं रिश्तों के चलते स्वामिनी हूँ इस घर की मैं।''[26]

'घर–बाहर' पुलिस विभाग में भ्रष्टाचार के साथ ही साथ पुलिस की नौकरी पाने वाली एक स्त्री की संघर्ष गाथा है जो घर एवं बाहर दोनों ही जगहों पर शोषण का शिकार होती है। 'उर्मिला' जो एक महिला पुलिस आरक्षी है उसका शोषण ट्रेनिंग से लेकर थाने एवं ड्यूटी के दौरान होता है। उर्मिला का पति भी नौकरीपेशा है। दोनों की

ड्यूटी एक ही जिले में है उसका एक चार साल का बच्चा भी है। एक ही जगह की पोस्टिंग का निवेदन लेकर वह डिप्टी के सामने जाती है, तो डिप्टी कहता है– ''तुम औरतें नौकरी करने क्यों निकल पड़ती हो। सरकार ने एक जिले में पोस्टिंग कर दी है, इतना काफी नहीं है क्या? अब घर बैठे तो नौकरी चलने से रही। ये पुलिस की नौकरी है, अस्पताल की दाईगिरी नहीं, बीस घंटे, दिन–रात, बारह महीने काम करना पड़ता है।''[27] संग्राम सिंह जो एक दीवान है ड्यूटी लगाने को लेकर उर्मिला अपने 4 महीने के बच्चे को क्वाटर पर छोड़ने को लेकर विवाद होता है। संग्राम सिंह उसका उपहास करता है तो उर्मिला प्रतिरोध करती है– ''दीवान जी, बुरा मत मानना, ऐसा कोई काम नहीं है जो औरत नहीं कर सकी। ट्रक और राकेट चलाने से लेकर सरहद पर तोप दागने तक..... खेलकूद हो या पढ़ाई लिखाई, राजनीति हो या प्रशासन– आदमी सब कुछ जानते हुए भी उन्हें नीचा और तुच्छ समझता है, फर्क सिर्फ इतना है कि औरत बच्चे जनती है, उन्हें पाल–पोसकर बड़ा करती है। घर की सफाई और खाना बनाने से लेकर तमाम काम उसके जिम्मे है। आदमी इन सबसे आजाद है।''[28] एक दिन जब थानेदार उसे अपनी हवस का शिकार बना लेता है और पति के ड्यूटी से आने पर उसे खाना तैयार नहीं मिलता है तो वह भी उसके ऊपर तोहमत लगाता है और वह अपनी माँ की बात को याद करती है– ''बेटी औरत की दुनिया घर के अंदर है। नौकरी करने से औरत पर दुहरी मार पड़ती है। घरवाला उसे औरत से ज्यादा कुछ नहीं समझता और बाहरी लोग सब कुछ जाने–समझते हुए भी उसमें औरत ही ढूँढ़ते हैं। पति की मार खाकर वह रात में ही थाने पर चली आती है।''[29]

'दारोश' कहानी में एक लड़की के साथ दो लड़के बलात्कार करते हैं। इसके विरोध में लड़की और उसके बाप अदालत में जाते हैं। अदालत दोनों लड़कों को चार साल की कैद और तीन हजार रुपये जुर्माने की सजा सुनाती है। बलात्कारित लड़की की माँ इतने बड़े अपराध के लिए छोटी सजा देने पर अपना विरोध प्रकट करती है और कहती है– ''बलात्कार की सजा महज तीन हजार रुपये ......? ऐसे कुकर्मी को तो चौराहे पर लटका कर शूट कर देना चाहिए था।''[30]

''अपनी देह के साथ स्त्री का संबंध ज्यादा सटीक है। दलित अपनी पहचान छिपाकर रह सकता है, स्त्री तो दूर से दिखाई देती है। वह यह भूल जाती है कि उसे एक घनघोर मर्दवादी सवर्ण संस्कृति के बीच रहना है, जहाँ पर हर क्षण पुरुष से अपनी रक्षा करते रहना जरूरी है। वह पुरुष छाते के नीचे ही पुरुष से रक्षा करने की विडम्बना की शिकार है।''[31]

'प्रोटोकॉल' कहानी की नायिका 'जूसी' संघर्षशील महिला है जो अपने पति की मृत्यु के उपरांत नौकरी करती है। ऑफिस में बॉस जब उससे अश्लील हरकत करता है तो वह बड़ी निडरता के साथ इस कृत्य का विरोध करती है और अपने बॉस को तमाचा मार देती है और कहती है– ''इज्जत–आबरू और संस्कृति का लिब्रेलाइजेशन नहीं होता..... विदेशी मुद्रा से बड़ी है ये चीजें, ये बचेंगे तो हमारा समाज– हमारा देश– हमारा परिवार बचेगा।''[32]

'तुम मेरी हो' कहानी में 'सैली' पात्र के माध्यम से प्रेम और सेक्स के मनोविज्ञान को समझने का प्रयास किया गया है। 'सैली' बिना बाप के एक गरीब लड़की है जो देह व्यापार के साथ–साथ गाइड का काम करती है। डॉ. साहब गोवा में मेडिकल कांफ्रेंस के सिलसिले में जाते हैं और अचानक एक ग्राहक समझकर सैली उनके पास आती है, डॉ. साहब उसके ऊपर मोहित हो जाते हैं और शादी के प्रस्ताव के बहाने उसके शरीर को भोगने का प्रयास करते हैं तो वह प्रतिरोध करती है– ''तुम इसे प्यार कहते हो डॉक्टर– वह छिटक कर उठ बैठी। ऐसा दुर्व्यवहार तो पत्नी से भी नहीं किया जाता। सीमा, मर्यादा, इच्छा–अनिच्छा सब कुछ अपनी मर्जी से चलाना चाहते हो। यह प्यार नहीं पशुता है।''[33]

'अनुत्तरित' असफल लोगों की सफल प्रेम कहानी है। जो समय और समाज की बंदिशों के चलते कभी अपने प्यार को अंजाम तक नहीं पहुँचा पाते। कथावाचक और स्मिता दोनों की पहली मुलाकात एक ड्रामा प्रतियोगिता में होती है और कॉलेज की पढ़ाई खत्म होने के साथ ही दोनों में दूरी बन जाती है। दोनों की शादियाँ घर वालों

की मर्जी से होती हैं स्मिता से कथावाचक की बरसों बाद मुलाकात होती है तब वह उसे अपने जीवन की विडम्बना को बताती है– ''तनय के साथ मैं दस साल रही। मैं इसे कोई संतान न दे सकी। तनय के पास पूर्वजों की बहुत बड़ी जायदाद थी। उसे उसका वारिस चाहिए था। मैं उसे इस तरह घुटते हुए नहीं देख सकती थी। मैंने उसे आजाद कर दिया। मैंने उसे तलाक दे दिया। शायद वह भी यही चाहता था .... या शायद नहीं, मैं कुछ भी नहीं कह सकती।''[34]

''पुरुषों का स्वार्थ ही है कि उन्होंने स्त्रियों के सामने विनम्रता, पूर्ण समर्पण और व्यक्तिगत इच्छा के हनन को यौन–आकर्षण के विभिन्न अंग के रूप में रखा ताकि मनोवैज्ञानिक रूप से स्त्रियाँ इतनी समर्पित हो जायें कि यौनिक स्वेच्छा और स्वतंत्रता के बारे में सोच भी न सकें और उन्हें अपनी पराधीनता में ही सुख का अनुभव हो।''[35]

प्रदीप पंत की 'टेक–रीटेक–कट' कहानी में उन्मुक्त जीवन जीने वाली लड़कियों के साथ यह समाज कैसे पेश आता है और उन्मुक्तता कभी–कभी कितनी घातक सिद्ध हो जाती है। इन सबका बयान इस कहानी में किया गया है। 'केतकी' उन्मुक्तता के चलते देह व्यापार में लिप्त हो जाती है। वह अनेक बार एबार्शन भी करवाती है। वह पहले काफी आदर्शवादी थी लेकिन समय ने उसे ऐसा बना दिया। वह फिल्म निर्देशक से सम्बन्ध बनाती है और कहती है– ''मैंने तुम्हारे साथ 20 लाख का कांट्रैक्ट किया है अजीत। बीस लाख में रेप सीन दिया जा सकता है और मैं दे दूँगी। नैचुरल लगेगा। तुम्हारी यह फिल्म पिछली फिल्म से भी ज्यादा चलेगी और फिल्मों की इस मंडी में मेरी कीमत बढ़ेगी।''[36]

'दो औरतें' में पश्चिमी सभ्यता के प्रति आकर्षण का वर्णन है। पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी खाने–पीने, पहनने के मामले में पश्चिमी सभ्यता के अनुकरण में पीछे नहीं है। कमरे में बैठे–बैठे ही उसने बड़ी शान से आर्डर किया–

''क्या पिओगी, इंटरकॉम पर आर्डर देता हूँ..........''

आप क्या लेंगे? ....''

तो आप स्कॉच मँगाए ....''

इतनी सुबह?''

क्या फर्क पड़ता है? ...... शराब तो शराब है। उसे को पियो ...... रात को पियो . ... आधी रात को पियो .... या फिर सुबह–सुबह पियो......... ।''[37]

'तिरिया जनम' में मिथिलेश्वर लिखते हैं कि– ''लड़कियों का अधिक पढ़ना–लिखना ठीक नहीं होता। नौकरी तो उन्हें करनी है नहीं घर बार संभालना है। चिट्ठी–पत्री लिखना बाँचना जान गई हो, बस यही काफी है।''[38]

''पुरुष ने औरतों पर शासन चलाने के लिए अपने पक्ष में धर्मशास्त्र की रचना की– ''शादी का अर्थ बेचना नहीं होता। मैं मनुष्य हूँ, कोई वस्तु नहीं कि जो जैसे चाहे इस्तेमाल करें।''[39]

''पति की मार पर इरखा नहीं करनी चाहिए। पति की मार तो 'सुहाग–भाग' है। गाँव में कौन मर्द अपनी पत्नी को नहीं पीटता? लेकिन सभी तुम्हारी तरह खाना–पीना और काम–धाम छोड़कर नहीं बैठ जाती। जो मारता है, वही दुत्कारता भी है........।''[40]

''साली ने डाक्टर के पास ले जाकर बेइज्जत किया...... साला डॉक्टर क्या कहेगा? भला मर्द में दोष होता है। बाँझ तो औरतें होती हैं।''[41]

स्त्री अस्मिता का सीधा अर्थ यही हुआ कि स्त्री को पुरुष संदर्भ से बाहर ले आना, उसे उसी की अनुभूतियों में रखकर परखना। पुरुषवादी विचारधारा का विरोध करना। उन तमाम आक्षेपों को निर्मूल करना जो स्त्री स्वाधीनता को स्वछंदता मानता है। इस संदर्भ में कहा जाता है कि– '''अस्मिता' अपनी निजी पहचान के साथ–साथ उस क्षेत्र और समाज की पहचान भी है जो हमारे संदर्भ तय करते हैं। ये संदर्भ जाति, रंग, वर्ग, नस्ल, क्षेत्र, भाषा, जेंडर, पेशे इत्यादि के रूप में हमारे अंतरंग (साइकी) के

हिस्से हैं।''[42] प्रकृति प्रदत्त स्त्री–पुरुष दो अस्मिताएं हैं। साथ ही स्त्री अस्मिता से जुड़ी हुई उसकी इच्छा है। अतः स्त्री इच्छा का सवाल उसकी अस्मिता का एकल है।

''गैर दलितों द्वारा लिखी गई कहानियों में दलित स्त्रियों का चित्रण कई रूपों में हुआ है, पर मुख्यतः दो रूपों में सर्वाधिक हुआ है। एक यौन शोषण और दूसरे आर्थिक शोषण के रूप में।''[43]

(ख) महिलाओं द्वारा लिखित कहानियाँ

समकालीन महिला कहानीकारों में ममता कालिया, चित्रा मुद्‌गल, मृणाल पाण्डेय, मेहरून्निसा परवेज, अलका सरावगी, नासिरा शर्मा, मृदुला गर्ग, कुसुम अंसल, मैत्रेयी पुष्पा, जया जादवानी, मंजुल भगत, सोनी सिंह, आरती झा, प्रत्यक्षा, नीलाक्षी सिंह, अल्पना मिश्र, कमल कुमार, दूर्वा सहाय, तवलीन, नमिता सिंह, जयवंती डिमरी, सुधा अरोड़ा, इन्दिरा राय, कृष्णा अग्निहोत्री, ऊषा महाजन, शोभा मेहरोत्रा, सुमन मेहरोत्रा, पुष्पा सक्सेना, सुषमा मुनींद्र, क्षमा शर्मा, नीलिमा सिन्हा, शशिप्रभा शास्त्री, दीपक शर्मा, मनीषा कुलश्रेष्ठ, कुसुम भट्‌ट, किरण अग्रवाल, सोनाली सिंह आदि का नाम उल्लेखनीय है।

समकालीन महिला लेखन में सम्बन्ध संदर्भों के बदलाव यथार्थ बोध को समकालीन विशेषण के रूप में कथा बनाकर उभारती है। वे नारी मन के अंतर–गहवरों में पूरी तरह झाँककर उन स्थितियों की अभिव्यक्ति करती हैं।

कहानीकार अपने समय के साथ होता है इसलिए उसका समय भी उसकी कहानियों में दिखाई देता है। समय के प्रति सजगता और विद्रूप व्यवस्था को उद्‌घाटित करने की उद्‌दाम इच्छा ही उसे एक सचेत कहानीकार बनाता है। आलोचक सुमित सौरभ का कहना है कि– ''कहानियों में लेखक बाहरी यथार्थ को देखने–परखने की जगह समकालीन समय के बहुरेखीय, संश्लिष्ट और बहुस्तरीय यथार्थ को उजागर करता है। अपने आस–पास की स्थितियों, संदर्भों के बीच से जो भी चरित्र चुनता है,

उसके अन्तःस्थल में झाँक उनके द्वंद्वों, तनावों और पीड़ा को महसूस कर कहानी में इस तरह व्यक्त करता है कि पात्र की निजी पीड़ा पाठक की संवेदना से जुड़कर वृहत्तर आयामों में आमजन के जिये–भोगे से एकाकार हो जाती है।''[44]

आज आदमी के रोजमर्रा के संघर्षों से रचनाकार अपने को सीधे–सीधे जोड़ने की कोशिश करता है, केवल संवेदना या सहानुभूति के स्तर पर नहीं, पूरी पक्षधरता और एकनिष्ठा के साथ। समकालीन स्त्री कथा–साहित्य अपने समय के मुख्य अंतर्विरोधों की अभिव्यक्ति है। वह अपनी प्राथमिकताओं को अपने जीवनानुभवों से पहचान कर उनके लिए लड़ने का संकल्प है। कोई भी साहित्य अपने समय की अवज्ञा नहीं कर सकता। साहित्य के सामने तो सबसे बुनियादी जिम्मेदारी रहती है कि वह इस बात पर गौर करे कि हमारे समय में मनुष्य किस हाल में है और जिस हाल में है, उस हाल में क्यों है? मनुष्य में अनेक परिवर्तन हुए।

समकालीन कथा–साहित्य वर्तमान सामाजिक परिवेश से जूझते व्यक्ति के दुःखों का साहित्य है वह जिन्दगी के सही अर्थों में जीने का पर्याय बन गया है और बहुत ही बेडौल टुकड़ों में बँटी आदमी की जिन्दगी को जोड़ने का प्रयास करता है। यथा समकालीन स्त्री कथा–साहित्य सुनिश्चित सामाजिक बदलाव के लिए जन संघर्ष के प्रति पूर्ण समर्पित है। ऐसी लेखिकाओं के नाम की चर्चा आरम्भ में ही कर दी गयी है।

''अंतिम दशक में भारतीय जीवन का स्वरूप बदला। अनेक राजनीतिक आंदोलन प्रारम्भ हुए। क्षेत्रीय दलों का विकास हुआ। वर्षों तक केन्द्रीय सत्ता पर काबिज कांग्रेस की चूलें हिलीं। वैचारिक धरातल पर उत्तर आधुनिकता, भूमण्डलीकरण तथा आर्थिक उदारीकरण की नीतियों तथा नव उपनिवेशवादी मनोवृत्तियों एवं वैयक्तिता की भावना, अर्थ के प्रति आकर्षण आदि ने मनुष्य को मनुष्य नहीं रहने दिया। गाँव उखड़कर शहर की तरफ भागने लगा या गाँव ही शहर बन गया। मानवीय संवेदनाओं का रूप बदला। विघटित होते मानवीय मूल्यों के साथ–साथ नई दिशा एवं दशा देने के लिए एक जबरदस्त चुनौती रचनाकारों के समक्ष मुँह बाए खड़ी हो गयी।''[45]

इतिहास साक्षी है स्त्री निरंतर उपेक्षा और शोषण का शिकार होती रही है और निरंतर विकास के साथ भी उसकी स्थिति में अपेक्षित परिवर्तन नहीं हुआ। साहित्य के क्षेत्र में प्रतिभा की दृष्टि से समान होने पर भी वे पुरुषों से पीछे रहीं। प्रभा खेतान पुरुष को बेहतर मानव मानने वाले इस समाज से प्रश्न करती हैं– ''औरत आधी दुनिया है, आधा हिन्दुस्तान है, फिर उसे मानवीय गरिमा से वंचित क्यों रखा गया?''[46] उसके पीछे रहने के अनेक कारण है– उर्मिला गुप्ता के अनुसार– ''शिक्षा की अपर्याप्तता, अध्ययन की सीमाओं, कार्यक्षेत्र में व्यापकता के अभाव, पारिवारिक उत्तरदायित्वों, समाज एवं परिवार के विरोध एवं वांछित प्रोत्साहन के अभाव के कारण स्त्रियाँ साहित्य–रचना में उतनी कृतकार्य नहीं हो सकी।''[47] अन्याय पर आधारित व्यवस्था के चलते इन सबसे ज्यादा प्रबल बाधायें हैं नारी का मातृत्व और आर्थिक विषमताएं। महिला लेखन दबी हुई स्त्री के मनोविज्ञान की व्याख्या करता है। साठ के दशक के बाद साहित्य में पुरुष वर्चस्व समाप्त होता है। महिला लेखन के क्षेत्र में उतरी हुई प्रतिनिधि लेखिकायें अलग–अलग द्वीप के समान हैं, जो नारी विद्रोह पर अपना–अपना दृष्टिकोण गहराई, प्रामाणिकता और विश्वसनीयता से लिख रही हैं। इन लेखिकाओं में पहली पंक्ति के अन्तर्गत मन्नू भण्डारी, ऊषा प्रियंबदा, कृष्णा सोबती, शिवानी, सुधा अरोड़ा, शशि प्रभा शास्त्री, मेहरून्निसा परवेज, मंजुल भगत, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, दीप्ति खण्डेलवाल, मृणाल पाण्डेय, नमिता सिंह, मालती जोशी, नासिरा शर्मा, सूर्यबाला, निरूपमा सेवती, मैत्रेयी पुष्पा, ममता कालिया इत्यादि हैं।

वर्तमान लेखन पहले की अपेक्षा मानव के समग्र व्यक्तित्व से कहीं गहरे तक जुड़ा है। युगीन सत्य के परिप्रेक्ष्य में आज की स्त्री कहानीकारों ने समकालीन परिस्थितियों के प्रत्येक बिन्दु को स्पर्श कर अपनी कृतियों में जीवन्त करने की भरपूर चेष्टा की है।

''समकालीन साहित्य में कहीं नारी का इशारा है, कहीं उसकी इच्छा का पुरस्कार है, कहीं आत्मसमर्पण का दण्ड है, कहीं भावना और प्रेरणा का उन्माद है, कहीं उसकी चाहत पहचान बनकर कालचक्र से ग्रसित हो अग्निपरीक्षा के लिए आहुति देती

है और अपने भाग्य की तलाश करती है। कहीं अपने स्पर्श से वह पुरुष की प्रकृति, प्रवृत्ति को और परिवेश को बदलना चाहती है फिर भी, वह अपने को भूलना नहीं चाहती क्योंकि भूलना भी आसान नहीं है।''[48]

इस तरह आज समकालीन साहित्य समकालीन समाज का दर्पण है जिसमें समूचा युग प्रतिबिम्बित होता दिखाई देता है। समकालीन लेखिकाओं ने अपनी लेखनी चलाकर स्त्री को एक नया आयाम प्रस्तुत कर समाज में उनके अस्तित्व का बोध कराया।

कोई राष्ट्र महान नहीं हो सकता, जब तक उसका स्त्री वर्ग महान और सद्‌गुण सम्पन्न न हो, जब तक ऐसे घर न हों, जहाँ प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन के मूल और अभिप्राय को समझना सीखे और अपने समय का ऐसा उपयोग करें कि उससे अधिक से अधिक लाभ उठा सके। इस समय जबकि सब लोग जाग रहे हैं और हर जगह हर समाज और देश में अविश्वास बढ़ रहा है, युद्ध के समान जुट रहे हैं और कहीं भी शान्ति नहीं है, यह और भी आवश्यक है कि देश की आवश्यकता के अनुकूल शिक्षा की कोई पद्धति निर्धारित करने के लिए देश के मनस्वी पुरुष ध्यान दें।

समकालीन परिवेश में तमाम आवश्यकताओं का अनुभव जिनता संवेदनात्मक स्तर पर कहानीकार प्रकट करता है, उतनी संवेदना के साथ अपने समय के समाज का उतनी सही और साक्ष्य आंकलन अन्य कोई चेतन प्राणी नहीं कर सकता है। आज इक्कीसवीं सदी की दहलीज पर हम खड़े हैं युग बदल गया, देश की अनुगूँज बदल गयी, हमारी परिस्थितियाँ बदल गयी, स्त्रियाँ आज पुरुषों के बराबर कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने लगी घर की चहारदीवारों में, बंधनों में जकड़ी स्त्रियाँ मुक्त होकर जहाँ की कल्पना भी नहीं की थी, आजादी के संघर्षों में घरों से बाहर आने का अवसर पाने औरा संवैधानिक समान अधिकारों की स्वीकृति पाने के बाद आज कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जहाँ नारी के नाते नारी का प्रवेश वर्जित है। कुसुम अंसल की कहानी संग्रह 'गुम होती गौरेया' में संकलित कहानी 'अखबार की वह खबर' में जिसे स्पष्ट रूप से देखा

जा सकता है। कम्प्यूटर क्लास से लौटते हुए सुहेल, गरिमा से कहता है कि– ''गरिमा, अब तक तो तुम माहिर हो गयी होगी, और होना भी है, यह वक्त गरिमा, औरत का है, तुम्हारा है, हम मर्दों का नहीं, दिस इज ए सेन्चुरी ऑफ वुमेन।''[49]

आगे वह जब पूछती तुम्हें आखिर ऐसा क्यों लगता है तो सुहेल पुनः कहता है कि– ''क्योंकि आज का माहौल ऐसा है, चारों तरफ जहाँ देखो, हर ओहदे पर औरत वाबस्ता है..... मेरी बॉस औरत है....... यह देखो मैगजीन, ज्यादातर फर्मों को औरत चला रही है........ नयी सदी की औरत एक चैलेंज बनकर सामने आ खड़ी हुई है.......... ''[50]

सोनी सिंह की कहानी 'अपना कमरा' का मूल कथा वर्जीनिया वुल्फ के एक वाक्य पर आधारित है 'स्त्री की मुक्ति की कुंजी उस कमरे में ही मिलेगी, जिसे वह अपना कह सके और जिसमें वह अपने भाइयों की तरह ही आजादी और खुद्दारी से रह सके। इस कहानी की नायिका सरिता का विद्रोह अकेले रहकर अपनी तरह जीने के लिए है। उसका एकमात्र उद्देश्य अलग रहकर पढ़ना, रचनात्मक लेखन करना और अपनी तरह से अपने निर्णयों से जीवन जीना है। अपने मित्र दीपक की इस बात से तो वह सहमत है कि इतने बड़े परिवार में रहकर क्रिएटिव काम नहीं किया जा सकता लेकिन इस बात से सहमत नहीं है कि वह अविवाहित दीपक के साथ रहे। अविवाहित दीपक के साथ रहने में केवल माँ के दिये संस्कार ही बाधा नहीं बनते बल्कि अपनी निजी मानसिकता भी बाधा बनती है। वह अपनी कमजोरी को अच्छी तरह जानती है। सोनी सिंह शारीरिक संबंधों की न तो कहीं बात हरती हैं और न उनके लिए किसी प्रकार का आधार तलाशती हैं। स्त्री और पुरुष का साथ केवल देह संबंधों की आवश्यकता के लिए ही नहीं होता, यह आदिम भूख है जो कहीं भी शान्त की जा सकती है।

प्रो० सूरज पालीवाल कहते हैं– ''सोनी सिंह की सरिता देह संबंधों से अलग अपने निजी अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही है इसलिए जब उसका मित्र दीपक उसके साथ रहने को कहता है तो वह मना कर देती है– 'डार्लिंग मैं और तुम अब दो तो रह

नहीं गये हैं। हर तरीके से एक–दूसरे के हो चुके हैं। क्यूँ नहीं तुम मेरे साथ आकर रहती हो? इतने बड़े फ्लैट में तो मैं अकेले ही रहता हूँ, तुम जैसे मर्जी वैसे रहना। मैं तुम्हें बिल्कुल डिस्टर्ब नहीं करूँगा।''[51]

प्रो० पालीवाल आगे लिखते हैं– ''इस कहानी को पढ़ते हुए मुझे यह लगा कि सरिता का पूरा व्यक्तिव भारतीय परिवार संस्था के अनुकूल है। यदि इसमें से उसके अलग रहने की छटपटाहट को निकाल दें तो सरिता कहीं अलग नहीं दिखाई देती।''[52]

एक दिन वह दीपक के साथ ड्राइव पर गई थी लौटने पर थकी–हारी सरिता ने अकेलेपन का लाभ उठाया और सारे कपड़े उतार सीधे बिस्तर पर जा गिरी। सारे कपड़े उतार दिये और नंगे बदन पैर फैलाकर सो गई। आखिर उसे यहाँ देखने वाला कौन है। अभी उसकी आँख लग ही रही थी कि अचानक ऐसा कुछ हुआ कि वह एकदम घबराकर उठ बैठी। उसे लगा जैसे किसी ने जोर का तमाचा उएसके गाल पर जड़ दिया और कहा कि ये क्या बेशर्मी है। वह एकदम सकपका गई। उसकी इस अफनाहट के पीछे उसका संस्कार है जो उसे ऐसा सोचने पर मजबूर कर रहा था।

''महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि वह अकेलेपन की मानसिक बीमारी 'हेलुसिनेशंस' का शिकार होकर लौटने का नाम नहीं लेती। दीपक के कहने पर भी वह झट से रूखेपन मना कर देती है। 'सरिता आखिर कब चलोगी अपने घर?' यह सुनते ही सरिता झट से अलग छिटक गई। जैसे सरिता के जीवन का अंतिम सत्य यही है, का भाव लिए दीपक उसकी तरफ देख रहा था।...... दीपक मेरा हाथ छोड़ो। कहीं नहीं जाऊँगी मैं। यहीं अपने घर में रहूँगी। समझे।''[53] अकेले रहने की जिज्ञासा और उसके भय दोनों को एक टेक्नीक में ढालकर इस कहानी को नई दिशा दी गई है।

महिला कहानी अपने समय के सत्यान्वेषण करके भावबोध को रचना धरातल पर छूने का प्रयास करती है। नवीन जीवन संदर्भों को जीवंतता प्रदान करता और नयी अर्थवत्ता भी प्रदान करता है। इस संदर्भ में स्त्री लेखिका रेशमी रामदोनी का कहना है कि– ''पुरुषों को इस बात का डर है कि अपने निजी स्वार्थों के बीच नारी इतनी

संकुचित न बनर जाये कि 20 या 50 साल बाद वापस जोड़ने वाली जरूरत उसे होने लग जाये। उनको कहीं लगता है कि आज की नारी की जरूरत से ज्यादा आत्मकेन्द्रियता, अपरिपक्व ओवरकानफिडेंस समाज के लिए भी उतनी ही विघटनकारी साबित हो सकती है जितनी खुद उसके लिए।''[54]

समकालीन कहानी में विवाह और प्रेम की सूक्ष्मतिसूक्ष्म समस्याओं पर अत्यन्त श्रेष्ठ कहानियों की रचना हुई है। यद्यपि पुरुष कथाकारों ने भी उससे संबंधित अच्छी कहानियाँ लिखी हैं किन्तु महिला कथाकारों ने बिल्कुल अनदेखी और अनछुई स्थितियों के साथ स्वयं की उपस्थिति दर्ज की है।

नासिरा शर्मा की कहानी– खुदा की वापसी का पात्र 'जुबैर' ससुराल छोड़कर गई हुई अपनी पत्नी 'हर्जाना' को वापस लाना चाहता है, लेकिन उसके साथी उसे ऐसा करने नहीं देते। वे कहते हैं– ''छोड़ यार, औरतों के चोचले हैं, इनके गाल पर एकाद जड़ा नहीं कि अक्ल ठिकाने आ जायेगी। हमारी बीवियों ने तो सिर्फ मेहर ही माफ नहीं किया, बल्कि रोज हमारी गलती को भी माफ करती है। मैं तो जानता हूँ कि ढोलक कसी न गई, औरत दबाकर रखी न गई तो बड़ी बेतुकी आवाजें निकालती हैं।''[55]

उषा महाजन की 'एंटीक' कहानी की नायिका 'मणि' शादीशुदा 'दिवाकर' से प्रेम करती है। अपने शादीशुदा होने की जानकारी खुद दिवाकर मणि को देता है। उसके बाद भी मणि के प्रेम में कोई कमी नहीं आती। वह अपना पूरा जीवन उसकी प्रेमिका के रूप में त्यागना चाहती है। वह कहती है– ''मुझे आपकी निशानी चाहिए। आपको पा नहीं सकती, जानती हूँ। मेरे साथ जो होगा, भुगत लूँगी। पर उस रूप में आप तो मेरे साथ रहेंगे हमेशा। विवाह टूटे तो टूटे पर प्रेम किसी भी तरह न टूटने पाये।''[56]

शोभा मेहरोत्रा की कहानी 'सच में' 'प्रिया' वरूण से बेतहाशा प्रेम करती है। एक दिन प्रिया का छोटा भाई दोनों को एक साथ देख लेता है और घर आकर अपनी माँ से प्रिया के प्रति गलत बातें बताकर उसकी पिटाई करता है। प्रिया की शादी परेश

नामक युवक से कर दी जाती है। प्रिया अपने पति से शारीरिक स्तर पर तो जुड़ती है लेकिन मानसिक स्तर पर नहीं। अंत में प्रिया ने एक बड़ा निर्णय लेते हुए अपनी माँ को पत्र लिखती है– ''माँ वही सब कुछ मेरे जीवन में दोहराया जाये यही सोचकर मैं तुमसे बिना कहे वरूण से विवाह कर रही हूँ। हो सके तो कल होटल 'गोमी' में आशीर्वाद देने आ जाना। तुम्हारी बेटी।''[57]

लवलीन की कहानी 'राज्यादेश' में 'चिनसू' एक लेडीज डॉक्टर है। वह जिस अस्पताल में काम करती है वहाँ अवैध पैदा होने वाले बच्चों को मार दिया जाता है। यह सब जानकर चिनसू एक अवैध बच्चे की जिन्दगी बचाकर उसे गोद लेती है। अस्पताल का प्रशासन उसे इस हरकत के लिए वहाँ से निकाल देता है। लेकिन वह अपने फैसले पर अडिग रहती है और सबसे बड़ा त्याग खुद के मातृत्व सुख का करती है और कहती है– ''मैं इस बच्चे को गोद ले लूँगी और अपने एक बच्चे को जन्म देने का अधिकार का परित्याग कर दूँगी। कल सुबह ही न्यायालय जाकर कार्यवाही शुरू कर दूँगी।''[58]

सुधा अरोड़ा लिखित कहानी 'रहोगी तुम वहीं' एक मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है। इस कहानी में पत्नी रोजमर्रा के काम से निराशावादी हो जाती है। शिक्षित होकर भी वह पढ़ना भूल जाती है। जैसे– ''वह किताब कहाँ रखी है तुमने? टेबल के ऊपर–नीचे सारा ढूँढ़ लिया। सेल्फ भी छान माना तुमसे कोई चीज ठिकाने पर रखी नहीं जाती? गलती की जो तुम्हें पढ़ने को कह दिया अब वह किताब इस जिन्दगी में मिलने से रही ...... तुम औरतों के साथ यही तो दिक्कत है, जहाँ शादी हुई नहीं, बाल–बच्चे हुए नहीं कि किताबों की दुनियाँ को अलविदा कह दिया और लग गये नून–तेल–लकड़ी के खटराग में।''[59]

पुष्पा सक्सेना की कहानी 'सच' नौकरी पेशा करने वाली स्त्री की संघर्ष गाथा है। 'बिन्नी' की माँ शारदा जो एक शिक्षिका है। उसने अपने कमाई से बिन्नी को पढ़ा–लिखाकर डॉक्टर बनाया। बिन्नी कहती है– ''उन्हीं बातों ने तो मुझे यहाँ तक

पहुँचाया है मम्मी। जब–जब हमें बोझा कहा जाय, मेरा मन तिलमिला उठता। सुमति मौसी ने अगर तुम्हे टीचर्स ट्रेनिंग न दिलाई होती, तो क्या हम इस कठघरे में बंद, दम न तोड़ देते।''[60]

कभी प्रेम का अर्थ था, अतीन्द्रिय और अशरीरी होना लेकिन आज जो दौर है उसमें स्त्री लेखिकाओं और पुरुष लेखकें दोनों के द्वारा खुलकर बातें लिखी जाती हैं। रति प्रसंगों की चर्चा होती है। वर्जनाओं को तोड़कर शरीर वर्णन किया जाता है। यौनांकन वर्ज्य नहीं है पर ऐसा भी क्या है कि लेखक की जीभ लपलपाती नजर आये। नीलाक्षी सिंह की कहानी– 'रंगमहल में नाची राधा' और 'उस बरस के मौस में अंतरंगता' को लेकर एक वैकल्तिपकता पाले हुए है।

'रंगमहल में नाची राधा' कहानी के प्रारम्भ में सुदामा प्रसाद का परिचय देते हुए बता दिया गया है कि इस समय उनकी उम्र 62 साल है। स्पष्ट है कि दीवानबाई भी साठ के आस–पास रही होंगी। दीवान बाई जैसी स्त्री उम्र के इस पड़ाव पर अपने भरे–पूरे परिवार से संतुष्ट ही हो सकती थी क्योंकि जवानी के दिनों में अपनी मेहनत और किफायत से इस घर को खड़ा किया था। गरीबी के दारूण दुख से बचने के लिए रात–दिन एक किये थे। 'दीवानबाई ने खुशहाल बचपन और सुस्त जवानी के कौमार्यावस्था वाले दिनों के अपने सीखे हुनरों को चमकाया और कुछ सादे कपड़े उसके घर आने लगे और उस घर से जाते वक्त उन कपड़ों पर किस्म–किस्म के फूल–पत्ते डालियाँ कढ़े होते। कसीदे के पैसों से दाल–नमक का जुगाड़ हुआ। .... दीवानबाई सारी उम्र उसी शहर में रहीं जिस शहर में उसका प्रेमी रहता था, पर ऐसा कोई दृश्य नहीं है जिससे उनके मिलने, बातें करने तथा देह को रोमांचित करने वाले कुछ प्रसंग आते हों। लेखिका ने खुद लिखा है– ''दीवानबाई की जवान आँखों के सामने उसके प्रेमी के घर किलकारियाँ गूँजीं। छलनी के उस पार से चाँद और सुदामा को बारी–बारी से देखती ...... उसकी आँखों के सामने उसका प्रेमी विधुर हुआ। यानी सब कुछ समाने ही हो रहा है फिर भी एक दूरी बनी हुई है तब वह प्रेम का घनीभूत रूप कहाँ गया जो जीवन के इस पड़ाव में अचानक बाढ़ की तरह आ जाता है।

''रंगमहल में नाची राधा'' की दीवानबाई को इतनी बड़ी उम्र में भी देह की आवश्यकता महसूस होती है इसलिए घर छोड़कर प्रेमी के पास चली जाती है।''[61] नीलाक्षी सिंह ने लिखा है– ''उम्र के इस पड़ाव पर ये कैसा भटकाव था जब उम्र थी, इच्छायें थीं, भूख थी, तब जो सब नहीं कर पायी उन चीजों की ओर अब .... इतने सालों बाद। ये तो जीवन का अंत करीब आ रहा था, अब फिर से एक नया जीवन जीने की चाह। वह भी इतने दायित्वों में बंधी होने के बावजूद .... समाज, घर, परिवार, रिश्तेदार............ एक औरत होने के बावजूद। नहीं, उसे अपनी पुरानी दुनिया में ही रहना होगा, उसी में रमा देना होगा अपने आपको।' उसने सुदामा प्रसाद की पीठ को सहलाया अपनी तर्जनी से, उसे मालूम था कि उसके स्पर्श मात्र से सुदामा प्रसाद में हसरतें जाग उठेंगी और .... वह हमेशा के लिए अपने को अपनी गृहस्थी में डुबो देंगे। लेकिन ये क्या? कोई हरकत नही हुई सुदामा प्रसाद में।........... उसके कानों में सुदामा प्रसाद के खर्राटे की महीन आवाज आई। उसने सावधानी से पूरी तरह अपने आपको सुदामा प्रसाद से अलग कर लिया। .... दीवानबाई ने अपने आपको सजाया और अपने प्रेमी के दरवाजे की घण्टी बजा दी।

प्रो० सूरज पालीवाल कहते हैं– ''नीलाक्षी सिंह को भारतीय परिवारों की स्थितियों और स्त्री–पुरुष संबंधों की समझ नहीं होगी, ऐसा मैं नहीं मानता पर इतना तो कहना ही चाहता हूँ कि अपने क्रांतिकारी परिवर्तनों के बावजूद भारतीय घरों में ऐसा नहीं होता, अपवाद कहीं भी हो सकते हैं लेकिन अपवाद कहानी के विषय नहीं हो सकते।''[62]

महिलाओं का सबसे अधिक उत्पीड़न सामाजिक क्षेत्र में होता है। अतः महिला लेखन का मुख्य उद्देश्य पुरुष समाज की घटिया सोच को उद्धृत करना है, जिसमें स्त्री देह को सिर्फ भोग की वस्तु समझा जाता है।

''लेखिकाओं ने स्त्री पर नैतिकता, चारित्र्य की पवित्रता, पतिव्रता, सहजशीलता जैसे थोपे गये मूल्यों की कलई खोल दी है। नारी को बस एक इंसान के रूप में

पहचाना जाय, इसके लिए लेखिकाओं ने स्त्री को एक संपूर्ण इकाई के रूप में अपनी कहानी में पेश किया है। साथ ही भारतीय स्त्री के मानस में गहरे पैठ चुकी भाग्यवादिता और रूढ़िवादिता की भावना को खत्म करने का प्रयास भी जारी है क्योंकि यह भावना जब तक नष्ट नहीं होती नारी की स्वयं की अपनी पहचान और उसका मुक्ति संघर्ष संपूर्ण नहीं हो सकता।''[63]

स्त्री शक्ति की सजीव प्रतिमा है। स्त्रियों की अनेक समस्याओं का समाधान शिक्षा द्वारा हो सकता है। आधुनिक युग में नारियों को आत्मरक्षा के उपायों को भी सीखना चाहिए। स्त्रियों की उन्नति से ही संस्कृति – ज्ञान का देश में जागरण हो पायेगा।

आरती झा द्वारा लिखी गई कहानी 'हम लड़कियाँ' में चार लड़की पात्र हैं– सौम्या, प्रीति, अनुजा और अन्नपूर्णा। सौम्या को ज्यादातर बातें फालतू लगती हैं और वह पढ़ाकू स्वभाव की है। पढ़ने के प्रति रुचि होना एक बात है लेकिन उसके लिए सभी चीजों को, घटनाओं को फालतू मानना बदलते समाज की स्थिति से मुँह मोड़ना है। 'उत्तरपूँजीवाद के प्रवक्ताओं ने समाज में जो अस्थिरता पैदा की है, अविश्वास का वातावरण निर्मित किया है उसमें सौम्या जैसी एक नहीं लाखों लड़कियाँ अपने जीवन का उद्‌देश्य पूरी मेहनत से पढ़ने में देखती हैं। पढ़कर क्या होगा, यह सब उसकी चिंता में शामिल नहीं है। आजकल की शिक्षा ने समाज से काटकर व्यक्ति केन्द्रित होने का सपना हमारी युवा पीढ़ी के मन में पैदा कर दिया है। केवल अपने काम में लगे रहो, समाज सुधार की जिम्मेदारी हमारी नहीं है।''[64]

दूसरी लड़की है 'प्रीति' जो कमाल की अंधविश्वासी है। ''भारतीय ज्योतिष से लेकर आयातित पाखण्ड फेंगशुई तक में उसका पूरा विश्वास है। वह अपनी जैसी लाखें लड़कियों का प्रतिनिधित्व कर रही है। जब से मध्यवर्ग के पास पैसा आया है, जब से उसने करोड़पति बनने का सपना देखना शुरू किया है, जब से महीने का वेतन लाखों के पैकेज में परिवर्तित हुआ है, तब से ज्योतिष और फेंगशुई पर विश्वास बढ़

गया है।''[65] इन्हें यह विश्वास नहीं होता कि ये सब कुछ उनके मेहनत का फल है या फिर भाग्य और ईश्वर की देन है।

तीसरी लड़की अनुजा है जिसको मेकअप करना अच्छा लगता है। वह हमेशा सुन्दर और स्टाइलिश दिखना चाहती है। यह सब दिखने के लिए वह ब्युटीशियन बनना चाहती है। यह एक तरह का मनोरोग है जो उदारीकरण के बाद बहुत तेजी से बढ़ा है। भारत के मध्यवर्ग को आकर्षित करने के लिए, उन्हें बावजूद का शिकार बनाने के लिए विश्वसुन्दरी बनने का सपना दे दिया और इन सबके पीछे अनेकों रासायनिक क्रीमों और नशे को प्रोत्साहित किया जा रहा हे। ''स्त्री विमर्श के नाम पर देह मुक्ति की बात करने वालों के लिए यह एक प्रकार की चुनौती है कि इस देश में स्त्री की मुक्ति उसके भ्रम से ही संभव है न कि उसके सौन्दर्य से। सौन्दर्य एक प्रकार का छलावा है और यह अंततः पतन की ओर ले जाता है।''[66]

चौथी लड़की अन्नपूर्णा है जो कत्थक डांसर बनना चाहती है। आजकल डांस भी एक तरह का फैशन है। टी.वी चैनलों परा डांस की प्रतियोगितायें आयोजित की जा रही हैं। इस प्रकार के डांस व्यावसायिक हैं, पैसे कमाने के साधन हैं। कथक की शास्त्रीयता को लेकर अन्नपूर्णा उत्सुक नहीं है।

कॉलेज की कैंटीन में प्रीति फिल्मी मैग्जीन के पन्ने पलट रही है। उन पन्नों में राखी सावंत को देखकर पूछती है– 'राखी सावंत को मीडिया वाले आजकल खूब तरजीह दे रहे हैं।' सौम्या बोली– 'अरे! यह सब पब्लिसिटी के तरीके है। अच्छा तू बता, कौन सी हीरोइन की फिल्में तू ज्यादा देखती है। क्यों? उनमें देखने जैसा होता क्या? देह की माया है। बाजार में कीमत तय है। बाजार उन्हें मुक्त कर रहा है। चीख–चीखकर कह रहा है कि वो तभी मुक्त हो सकती हैं जब देह दिखायें। आजादी देह पर आकर टिक गई है।''[67] यह कहानी चार मध्यवर्गीय लड़कियों को केन्द्र में रखकर पूरी स्त्री जाति की प्रतिनिधित्व करती है।

''आधुनिक भौतिकतावाद प्रधान युग की नारी को यही दुख है कि वह पुरुष के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता पाकर भी संसार के अनेक आश्चर्यों में एक बन गयी है, उसके हृदय की एकांत श्रद्धा की पात्री बनने का सौभाग्य उसे प्राप्त न हो सका। संसार उसे देख विस्मय से अभिभूत होकर चकित–सा रह जाता है, परन्तु नतमस्तक नहीं होता।''[68]

मेहरून्निसा परवेज ने 'सोने का बेसर' (1991) में नारी स्वातंत्र्य की प्रबल हिमायती पीड़ित– शोषित नारी वर्ग का, समाज के हर वर्ग की समस्याओं का, आधुनिक सभ्यता की समस्याओं का चित्रण प्रभावशाली ढंग से किया है। ''मैंने अपनी कलम से नारी की व्यथा लिखी है, बदले में मुझे क्या मिला इसका ब्यौरा मैं देना नहीं चाहती। बस, इतना जानती हूँ कि मेरी कहानी को पढ़कर किसी एक नारी को भी जिन्दगी का सच मिल जाय तो यह मेरा इनाम होगा। .... औरत का बोलना समाज ने, घरवालों ने कभी पसंद नहीं किया। औरत चुप अच्छी लगती है, जैसे देवी का रूप। .... औरत जब घर छोड़ती है तो कुलटा कहलाती है, पर जब पुरुष घर छोड़ता है तो वैरागी, साधु, भगवान में महान पुरुष कहलाता है, जैसे तुलसीदास, भगवान बुद्धा।.......... औरत केवल मीराबाई बनकर रह जाती है।''[69]

'अयोध्या से वापसी' कहानी में परिव्यक्ता स्त्री के दर्द को बड़ी गम्भीरता से उकेरा गया है। पति द्वारा उपेक्षित 'नीरा' जब उसे छोड़कर अपने मायके वापस लौटती है तो उसके अपने संयुक्त परिवार में उसकी उपेक्षा होती है। पिता को छोड़कर कोई उसे देखना तक नहीं चाहता। बाद में उसे कोई और आश्रय तलाशना पड़ता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि पति द्वारा छोड़ी गई स्त्री या स्वयं अकेले रहने का निर्णय करने वाली स्त्री को समय–समय पर समाज की उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है।

अल्पना मिश्र की कहानी 'मुक्ति प्रसंग' की नायिका ऋषिकेश के सरकारी डिग्री कॉलेज में प्राध्यापिका है। पति डॉक्टर है जो देहरादून में बच्चों के साथ रहते हैं। पत्नी देहरादून से ऋषिकेश रोजाना आना–जाना करती हैं। घर में और कोई नहीं है। बच्चे

अब बहीं तालमेल नहीं बिठा पाते क्योंकि मध्यवर्ग के बच्चे अपने घरों में जिस मस्ती के साथ रहते, खाते–पीते हैं उसे छोड़कर वे कहीं नहीं जाना चाहते। उसने जब नौकरी करने का निर्णय लिया था तब भी यही स्थितियाँ थीं इसलिए उसका यह निर्णय अपने बलबूते पर था जिस पर आज वह अडिग है और मुक्ति की साँस ले रही है। अतः बड़े आत्मविश्वास से कहती है– ''अब वे उन्हें घर बैठने को कहें भी तो वे नहीं बैठेगी। वह मुक्ति की साँस क्या घर बैठे मिलेगी?''

''नौकरी पेशा स्त्री की विडम्बनाप यहीं समाप्त नहीं होती। पहले वे भावुकता में सारा हिसाब लेता है। कहा जाता था कि स्त्री जिस अधिकारपूर्वक उनसे हिसाब लेता है। कहा जाता था कि स्त्री जिस दिन आर्थिक रूप से सुदृढ़ हो जायेगी उस दिन वह अपने निर्णय खुद लेने के लिए स्वतंत्र होगी लेकिन भारतीय परिवारों में ऐसा नहीं होता। स्त्री और पुरुष दोनों के संस्कार उसे ऐसा करने नहीं देते। उसका दोहरा शोषण होता है, वह नौकरी भी कर रही है और आर्थिक अधिकारों से वंचित भी है।''

अल्पना मिश्र की कहानियाँ इसी आम आदमी या आम स्त्री के लिए जगह ढूँढ़ने की कहानियाँ है। मुक्ति प्रसंग की नायिका एक विवाहित, कामकाजी और रोजाना लोगों की कुदृष्टि का सामना करते हुए एक ऐसे लड़के से मिलती है जो चाहकर भी दुबारा नहीं मिल पाता। कहानी के अंत में वह लिखती हैं– ''वह उतर गया वे मन ही मन आकर्षित हुईं। अपनी इस कुण्ठा को वे कुंठा तक नहीं कह पाईं। बल्कि इसे मन ही मन उन्होंने कुछ अलग तरह की मुक्ति का अनुपम रंग माना। बरसों वे टिहरी से आने–जाने वाली बसों में उसकी एक झलक पाने को आतुर रहीं। पर पता नहीं, वह कभी इधर आया ही नहीं था आया और वे पहचान नहीं पाईं या उन्हें झुठलाया किसी दूसरी बस से आकर चला भी गया? कुछ भी हो, वक्त उनके हाथ से चिड़िया की तरह उड़ गया था।''[70]

''अल्पना मिश्र की कहानियों को पढ़ते हुए मुझे बार–बार यह लगा कि वे स्त्री विमर्श और देह विमर्श के हवाई मुद्दों से अलग हटकर स्त्री की उन तकलीफों को

अपने लेखन का आधार बनाती हैं जिन तकलीफों से एक स्त्री का रोजना मुकाबला होता है।''[71]

अल्पना मिश्र की कहानी 'इस जहाँ में हम' मध्यवर्गीय नौकरी पेशा वाली स्त्री को स्पष्ट करती उसके दोहरे संघर्ष को व्यक्त करती है। कम्प्यूटर लर्निंग प्रोग्राम लिए जाते हुए वह अपने सहकर्मी से ही आलोचना का शिकार होती है। एक कार में आगे बैठने को लेकर वर्मा जी कटास करते हैं– ''नौकरी करेंगी साथ में, जायेंगी साथ में, पैसा लेंगी बराबर का और साथ बैठने में सती–सावित्री बनने लगेंगी। या फिर नौकरी क्यों कर रही हैं? इतने नखरे हैं तो घर बैठें।''[72]

सहकर्मियों के कहने पर मोबाइल खरीद लेना उसके लिए बुरे सपने जैसा साबित हुआ। ट्रेनिंग से घर आने पर उसका पति ही बच्चों को माध्यम बनाते हुए उस पर कटाक्ष करता है– ''मम्मी ने आज मोबाइल लिया है, कल कार ले लेंगी, फिर तो स्टैन्डर्ड इतना हाई हो जायेगा कि ये घर भी छोटा लगने लगेगा।''[73]

''परिवार अब भी स्त्री की सबसे मजबूत जमीन है। यह उसका अपना निजी क्षेत्र है। अपनी जमीन पर खड़ी होकर वह जितनी मजबूती से आगे वाले समय का सामना कर सकती है, उतना अन्य किसी जमीन पर नहीं।''[74]

'चमगादड़ें' कहानी की नयिका सोनिया अपनी ही बहन पर दो पैसे कमाने के कारण वर्चस्व स्थापित करना चाहती है कि मेरी यह चीज मत छुओ, तो मत छेड़ो इत्यादि। मारिया के द्वारा चार रुपये चप्पल के लिए माँगने पर उसे झिड़क देती है– ''मर–खपकर अस्सी रुपया स्कूल से कमाती हूँ, उसके भी सौ हिस्सेदार हो जाते हैं। अपने धोबी का हिसाब अलग से करूँ। बस का किराया अपने पैसे से दूँ। मेले का क्रिसमस प्रेजेन्ट मिलना तो दूर, उस पर उधार माँगने को सब तैयार।''[75]

'जनम' नामक कहानी में ममता कालिया, लड़की के पैदा होने परा घर में छाये तनाव का विरोध करती है। ''जिस दिन वह पैदा हुई, कोई त्योहार नहीं था, बाहर या

घर में कहीं कोई जश्न नहीं मना। उलटे घर में तो मातम ही मना। दादी ने चूल्हा नहीं जलाया, लालटेन की मद्धम रोशनी में सिर पर हाथ रखे, वे देर तक तख्त पर बैठी रहीं। बड़े लाडले की छोटी बेटी के लिए उनके मन में सिर्फ नामंजूरी थी। उन्हें बड़े तीखेपन से अपनी तीनों बेटियों का ध्यान आया जिनके रहते वे कभी बेफिक्री से पाखाने तक में नहीं बैठ सकीं। तीनों प्रसूतियों पर उनका दिल कैसा टूटा था, कैसे अपमानित हुई थीं वे अपनी ससुराल में।''[76]

महिलायें विद्रोह और किसलिए करती हैं इसका उत्तर 'बोलने वाली औरत' की अन्य कहानियों में मिलता है। यांत्रिक दिनचर्या के पारंपरिक स्वरूप के प्रति शिखा के मन में विद्रोह उठता है– ''दुनिया भर में विवाहित औरतों का केवल एक स्वरूप होता है। उन्हें सहमति प्रधान जीवन जीना होता है। अपने घर की कारा में वे कैद रहती हैं। हर एक ही दिनचर्या में अपनी–अपनी तरह की समरसता रहती है। हरेक के चेहरे पर अपनी–अपनी तरह की ऊब। हर एक घर का एक ढर्रा है जिसमें आपको फिट होना ही होना है। कुछ औरतें इस ऊब पर श्रृंगार का मुलम्मा चढ़ा लेती हैं और उनके श्रृंगार में भी एकरसता होती है। शिखा अन्दाज लगाती, सामने वाले घर की नीता ने आज कौन सी साड़ी पहनी होगी और प्रायः उसका अंदाज ठीक निकलता। यही हाल लिपिस्टिक के रंग और बालों के स्टाइल का था। दुख की बात यह थी कि अधिकांश औरतों को इस अब और कैद की कोई चेतना नहीं थी। वे रोज सुबह साढ़े नौ बजे सासों, नौकरों, नौकरानियों, बच्चों, माली और कुत्तों के ..... घरों में छोड़ दी जातीं, अपना दिन तमाम करने के लिए। वहीं लंच पर पति का इन्तजार, टी.वी. परा बेमतलब कार्यक्रमों को देखना और घर–भर के नाश्ता, खाना–नखरों की नोक पलक संवारना। चिकनी महिला पत्रिकाओं के पन्ने पलटना, दोपहर में सोना, सजे हुए घर को कुछ और सजाना, सास की जी–हुजूरी करना और अंत में रात को एक जड़ नींद में लुढ़क जाना।''[77]

''जिन्दगी सात घण्टे बाद की' में ममता कालिया जिन्दगी की 'न–कुछता' (Nothingness) के बोझ से दबी लड़की से कहलवाती है। ''छुट्टी के दिन वक्त ऐसे

रेंगता है जैसे बस का भीमकाय क्यूँ ...... एक–एक–एक।'' सुबह 10 बजे का उत्साह, शाम पाँच बजे भी गये– अब से लेकर कल 10 बजे का समय– वह और देवनगर का उसका फ्लैट– और कुछ नहीं।''[78]

जब दिखाने के लिए, कोई नहीं होता तो श्रृंगार भी खोखला लगता है– ''आइने पर धूप तिरछी पड़, धूल के कणों को चमका रही थी। आत्मीया को लगा, उसका चेहरा तो वहाँ ड्रेसिंग टेबल पर रखा, फाउण्डेशन क्रीम, नरीशिंग क्रीम, हैंड लोशन, स्किन फूड, पाउडर, खज़ की डिबियों में। इस समय वह लेटी है वह रात का चेहरा है। दिन का चेहरा कितनी ही गुलाबी, पीली, शिशियों में बंद दुष्टता से मुस्कुराता उसकी प्रतीक्षा कर रहा है।''[79] इस अकेलेपन, असुरक्षा के प्रति विद्रोह ममता कालिया की इन कहानियों में मिलता है।

समकालीन स्त्री लेखिकायें अपनी विचारधारा का हृदयंगम करने के अपनी चेतना को व्यापक बनाना है। आज प्रश्नों की भरमार है। आपाधापी है यांत्रिक जड़ता है, जिसे हम आंदोलित करके जीवन की अभिलाषा रखते हैं। प्रश्नों के उत्तर सहज नहीं होते हैं। प्रश्नकर्ता ही जब उत्तरदाता भी बन जाता है तो चेतना का द्वार खुलता है। समकालीन स्त्री कहानी ने यथार्थ चित्रण के इस मुहावरे को तोड़कर यथार्थ को पूर्ण निर्मम रूप में स्वीकार कर अपनी वैचारिकता से संयुक्त किया।

कुसुम अंसल की 'स्पीड ब्रेकर' कहानी में पंरपराओं के प्रति विद्रोह व्याप्त है– ''जी चाह रहा था विद्रोह कर डालूँ, सबसे बदला लूँ..... माँ–बाप से...... जिन्होंने जाने क्या सोचा, जहाँ भी चाहा ब्याह किया, विद्रोह करूँ अपने आपसे जो बिना प्रतिवाद किये, हालात से समझौता किए सिर झुकाये चलती रही। फिर अपने पति विवेक से, अपने घर के कीमती फर्नीचर या फ्रिज की तरह मुझे भी घर का एक विशेष अंग समझकर प्रयोग किया। और फिर सोचो तो मुझे अपनी इस अनजान अवस्था का ख्याल भी तो आया है अब, जब दोपहरी छा चुकी है, घनी धूप सिर पर है, मेरे शरीर में थकान समा रही है, उम्र पर शाम का धुँधलका छाता जा रहा है, मेरी अपनी

आवश्यकता कम हो चली है; मुझेग अपने आपको शाम के हवा ले होने से रोकना है। . ... खैर, अब शायद जिन्दगी 'स्पीड ब्रेकर' के पास आ चुकी है, धीरे चले तो झटका नहीं लगेगा, और यह रास्ता शायद मंजिल से जा मिले।''[80] ये कहानियाँ अपने पाठकों को आत्ममंथन करने को विवश करती हैं। पुष्पपाल सिंह कहते हैं– ''बिल्कुल नई पीढ़ी की कहानीकारों को धाकड़ भाव अपनी सड़ी–गली सामाजिक मान्यताओं, दुहरी नैतिक मान–मर्यादाओं तथा दुहरी मूल्य–दृष्टि पर तीव्र प्रहार कर एक स्वस्थ समाज–निर्माण की नींव खड़ी करता है।''[81]

'मात्र एक मकान' नामक कहानी महिलाओं के सतहीपन को उजागर करती हुई कहानी है। ''शाम को प्रायः सभी सहेलियाँ सैर पर निकलती हैं। चिड़ियाघर की दीवार से सटी सड़क के किनारे सभी गप्पे मारतीं, हँसती दो–तीन चक्कर लगा लेंती– ''सौर मण्डल से भी अधिक प्रकाशित हमारे 'सौरमण्डल' में खूब नये–नये वार्तालाप, चिंगारियों से जलते–बुझते उभरकर आती एक उथली मानसिकता जहाँ भाव संवेदना बिल्कुल नहीं थी, जीवन को वह मात्र सैर–सपाटा समझे बैठी थी, एक उड़ताऊ नजर से संसार को तौलती हुई।''[82]

स्त्रियों में व्याप्त इस हल्केपन को चित्रित करने के लिए, एक भिन्न मानसिकता वाली गंभीर महिला के साथ लेखिका साम्य स्थापित करती है। इतनी व्यवस्थित, स्मार्ट, खूबसूरत महिला होने के बावजूद सुधा रखैल है। इसलिए नायिका के अलावा, कोई भी उसकी तरफदारी नहीं कर सकती, दूसरी स्त्रियाँ उसकी जिंदगी में झाँककर गलतियाँ ही निकालती हैं। सोच लेती हैं कि– ''वह कुछ भी कहे, सीता–सावित्री नहीं हो सकती, उसके बच्चे हमारे बच्चों की बराबरी नहीं कर सकते, रखैल के बच्चे अपने घरों से नहीं ब्याहे जा सकते।''[83]

''इस प्रकार से, सौरमण्डल की सभी सखिया सुधा से नाराज हैं। कोई उसकी दयनीय स्थिति का सही मूल्यांकन करने के लिए तैयार नहीं कि विधवा हो जाने के बाद, जब जेठ–देवर सहारा नहीं बने, तो मलहोत्रा से उसे हलका–सा संबल मिला।

अपनी नीच सोच के चलते, वे सिक्के के रूख को उलटकर ही देखने की जिद करती हैं और सब की सब, सुधा की बेटी की सगाई में आये हुए निमंत्रण को बड़ी निर्ममता से, भारी–भारी इल्जाम लगाकर लौटाये दे रही है।''[84]

स्त्री जीवन का सबसे दुखद पहलू है, उसका विधवापन है। यदि कोई स्त्री विधवा हो जाती है तो उसके सारे सुख स्वप्न खत्म हो जाते है। पुरुष विहीन स्त्री का निज अस्तित्व कुछ भी नहीं। आज जबरन स्त्री को सती तो नहीं किया जाता है, किंचित घटनायें अपवाद स्वरूप मिल जायेंगी। फिर भी विधवा होना उसके जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना है। विधवा–स्त्री स्वयं को अकारण ही हीन समझने लगती है। कुंठा ग्रस्त हो जाती है। वह ऐसा मानने लगती हैं कि उसका विधवा होना उसके दोषों का परिणाम है। विधवा होकर उसने भयंकर अपराध किया है। तमाम सारे कानून उपबंध, शिक्षा एवं जागरूकता द्वारा भी समकालीन भारतीय समाज में विधवा–स्त्री को अपेक्षित सम्मान नहीं मिल पाया है।

कृष्ण अग्निहोत्री की कहानी 'अपने अपने कुरुक्षेत्र' की नायिका 'विजया' विधवा है लेकिन वह परम्परागत विधवाओं से मुक्त है। वह रवि नामक ऑफिसर की मदद से नौकरी पा लेती है और वह रवि के साथ उन्मुक्त यौन संबंध रखती है। यही नहीं वह रवि के पिता के साथ भी यौन संबंध बनाती है जो काफी बुजुर्ग भी हैं। वह अपनी यौन स्वच्छंदता को व्यक्त करती है– ''परिस्थितियों ने कुछ ऐसा रद्दो बदल किया कि रवि मुझे पाने के लिए छटपटाये और सब कुछ वैसा हो गया जो पहले होना था। पूर्व होता तो मैं आपसे न जुड़ती........ अब उनसे टूटना सरल नहीं। मैं तो आप दोनों को निभा लूँगी, इतिहास में तो पाँच लोगों से एक स्त्री निभाती रही मैं क्या आप दोनों से नहीं निभा सकती।''[85]

नीलिमा सिन्हा की 'एड्स' कहानी की संतिया अछूत स्त्री है। उसका पति जब दो बरस के लिये पंजाब जाता है तो उसके मर्द का बड़ा भाई उएसे खाने के लिए तरसाता है और आखिर में उसे घर से बाहर का रास्ता दिखा देता है। असहाय संतिया

पेट भरने के लिए वेश्या के धंधे को अपनाती है। इससे अवैध संतती का जन्म होता है। जब यह बात गाँव वालों के सामने आती है तो लोग गुलछर्रे उड़ाने की बात कहकर उसका उपहास उड़ाते हैं। तब वह रोते हुए कहती है– ''जो मजा मिलता था, वह तो मेरा मन ही जानता है। पेट की भूख बड़ी निर्मोही चीज होती है। एक दिन, दो दिन– कै दिन भूखे रह सकता है आदमी।''[86]

इस प्रकार नीलिमा सिंह की कहानी यहाँ **पर** 'अनुभव की प्रमाणित की स्थिति' चिंतन की गहराई में तब्दील हो गयी है।

'सबीना के चालीस चोर' कहानी की पात्र एक छोटी लड़की है, जो बड़ों जैसी दृष्टि रखती है। उसका मानना है कि फसाद करने वाले, दूसरों की हक मारने वाले ही चालीस चोर हैं, जो हमेशा कमजोर वर्ग को दबाते हैं। इसी सबके बीच बार–बार अपने होने का अहसास दिलाती छोटी–छोटी मगर समझदार लड़कियाँ समूचे संघर्ष का हिस्सा हैं, अलग–अलग कहानियों में अलग–अलग किरदार निभाती सबीना से लेकर गुल्लो, सायरा, चम्पा, मुन्नी, जैसी लड़कियों में नासिरा शर्मा खुद को ही प्लाण्ट करती है।

'हरी बिन्दी' की नायिका पति राजन के दिल्ली जाने पर स्वयं को इतना स्वतंत्र महसूस करती है कि आज का दिन यूँ ही नहीं जाने देती। उस दिन वह सब कुछ करती है, जिसे पति की उपस्थिति में नहीं कर पाती– खाना न बनाना, आर्ट गैलरी में अकेले हँसना, गर्म टिकिया और ठण्डी आइसक्रीम एक ही साथ खाना, और एक अजनबी विदेशी के साथ कॉफी हाउस और टैक्सी में बैठना, बतियाना आदि। वह पति से अलग स्वतंत्र व्यक्तित्व जी रही है। ''वह जीवन में पहली बार ऐसे इंसान के साथ बैठी जो यह नहीं जानना चाहता कि उसके पति हैं या नहीं और हैं तो क्या काम करते हैं।'' दाम्पत्य जीवन की मुक्ति के लिए छटपटाती यंत्र स्वरूप जिस युवती का मानसिक चित्र मृदुला गर्ग ने खींचा, वह भारतीय परिवेश में एक नये मोड़ का सूचक है।

'उसकी कराह' की सुधा रुग्णावस्था में अपने पति की उपेक्षा का शिकार तो है ही सास द्वारा उसे उपेक्षा ही मिलती है। वह सुधा की चिंता करने के स्थान पर अपने

बेटे का दूसरा विवाह करने को सोचती है और एक कन्या को वहाँ ला भी देती है। ''बेचारा, माँ ने उसे अस्पताल से निकल गाड़ी में सवार होते देखकर सोचा, घर में रहते बेघरबार हो गया है। लगता है सुधा ज्यादा दिन नहीं जिएगी। भगवान की मर्जी ...... होनी को कौन टाल सकता है .... खैर बीबीजी की ननद भली लड़की है, साथ रहेगी तो मोह भी हो जायेगा। लगता है वह घर और सुमीत दोनों को संभाल लेगी।''87

इसी प्रकार 'दो एक फूल' में शातम्मा जो कि अपना बच्चा खो चुकी है अपनी सास द्वारा सहानुभूति पाने के स्थान पर ताना ही पाती है। सास के डर से उसे अपराधियों की भाँति छिपकर कड़ाई करनी पड़ती है। ''दिल से डर नही निकलता था। पिछली बार भी भगवान ने उसका साथ नहीं दिया था। इन दिनों अजरबाई की साड़ी न काढ़ रही होती तो जाने कितनी दुखी रहती। वह नहीं जानती कि ऐसा क्यों होता है पर मन खराब होने से सुई–धागा लेकर बैठने से शांति मिलती है....... पर तब कपड़े पर दो–एक फूल खिलते ही सास आकर ताना मार जाती थी, ''क्या और है तू! अभी बच्चा मरा, अभी फूल होने तेरे को।''88

''अछूत होना भयावह है– और यह कितना भयावह है, इसे एक अछूत ही समझ सकता है। शूद्र होने का मतलब मनुष्य की गर्दन पर सिर न होना है और अछूत होने का मतलब मनुष्य के शरीर में साँस का न होना है।''89

हमारे समाज में सदियों से दलित और स्त्री व्यवस्था का शिकार बनते रहे हैं। वैश्वीकरण के दौर में समाज और हमारा रहन–सहन भले ही क्यों न बदल जाय, दलितों और स्त्रियों के लिए हमारी संकीर्ण मानसिकता आज भी विद्यमान है। समाज में इसी मानसिकता को रचनात्मकता के आइने में रजतरानी मीनू की कहानी संग्रह 'हम कौन हैं?' उजागर करता है। इस कहानी संग्रह की सम्पूर्ण (12) कहानियाँ दलित जीवन तथा उससे निकले संघर्ष, पीड़ा, आयाम बोध की अभिव्यक्ति हुई है। ये कहानियाँ आज के जीवन के यथार्थ का साक्षात्कार कराती है। जहाँ आजादी के बाद आये तमाम बदलावों के बावजूद दलित और स्त्री यातनापूर्ण जीवन जीने के लिए विवश

है किन्तु यह विवशता कहीं भी उनके संघर्ष को कम नहीं होने देती तथा नई संभावनाओं की तलाश में प्रयासरत रहती है। लेखिका अपने समय में समाज व संबंधों में आ रहे तेजी से बदलावों पर पैनी निगाह रखती हैं। 'वे दिन' कहानी में दलित आने वाले बदलावों को बड़े सधे शब्दों में अंजू के माध्यम से लेखिका दलित स्त्री की समस्याओं और संघर्षों को उजागर करती है। इसके साथ ही साथ शिक्षा के प्रति उसकी अदम्य जिजीविषा को भी कहानी में रेखांकित किया गया है। दलित समाज में नई –नई समस्याओं से अवगत कराते हुए पुरुषों की उस मानसिकता का भी परिचय कराती हैं जिसके लिए स्त्री का आगे बढ़ना उसे कुंठाओं और वर्जनाओं से भर देता है। पति उसे लगातार शारीरिक, मानसिक प्रताड़नाएँ देता है। कहानी दलित स्त्री–पुरुषों के संबंधों, समस्याओं के साथ–साथ विचार अन्य स्तरों तक भी ले जाता है।

भूमण्डलीकरण के दौर में निजता एवं संबंधों में आधुनिकता के नाम पर जो अंधी दौड़ मची है, उस वास्तविकता की पड़ताल भी रजत जी 'धोखा' कहानी में करती है। जहाँ 'लिव–इन' संबंधों की चिंताओं से एक माँ अपने अनुभव के द्वारा आधुनिक बेटी को परिचित कराती है। माँ के रूप में मानो लेखिका समाज की हर बेटी को स्वतंत्रता की आड़ में शोषण और धोखे के नये तरीकों और पितृसत्तामक व्यवस्था ने जिसके आचरण पर प्रतिबंध लगाया गये प्रतिबंध को तोड़ने और नकारने की प्रतिबद्धता प्रकट करती है। यह कहानी स्त्री विमर्श के नये दायरों और बहसों को आवाज देती है कि स्त्री को अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष में आगामी खतरों से सावधान होना होगा। इस स्त्री को किसी की सहानुभूति की आवश्यकता नहीं क्योंकि उसे मालूम है कि जख्मों पर मरहम लगाने के बहाने उसके आत्मसम्मान पर और अधिक गहरे प्रहार होंगे।

'सलोनी' कहानी के माध्यम से लेखिका जेंडर भेदभाव के साथ सुन्दरता के तय मानकों के आधार पर भी प्रत्येक स्तर पर उसका शोषण होता है। गोरे होने की शर्त के आगे लड़की के सभी गुणों का महत्व गौण हो जाता है और वह निरन्तर समाज के तानों और अपमान का शिकार बनने लगती है। किन्तु उनकी ही कहानी 'सुनीता' कड़ी धूप में भी संघर्ष और दृढ़ संकल्प से खिलती शीतल छाँव के माध्यम से नई संभावनाओं

को पैदा करती हैं उसमें नेतृत्व की क्षमता के साथ–साथ विपरीत परिस्थितियों में भी आगे बढ़ने का हौसला है। एक दलित स्त्री के संघर्ष और सफलता को कहानी में सशक्त शैली में प्रस्तुत किया गया है। ये स्त्रियाँ विपरीत परिस्थितियों में समाज में अपनी जगह तलाशती और बनाती नजर आती हैं। यह भी बताती हैं कि ये स्त्रियाँ रूढ़िवादी मानसिकता से हारती नहीं अपितु जूझती हैं।

''दलित साहित्य केवल पीड़ा का साहित्य नहीं है, यह उनकी मुक्ति कामना का साहित्य भी है। इसलिए यह साहित्व नीग्रो नारी मुक्ति आंदोलन के साहित्य की तरह ही बदलाव का साहित्य भी है। उसके साथ–साथ ये नये समाज के निर्माण का साहित्य भी है। इस साहित्य में भगवान, भाग्य, विकृत, परंपरा, अंधविश्वास के नकार के साथ–साथ वैज्ञानिक सोच, विवेक और न्यायपरक व्यवस्था, समता, भाईचारा और आजादी का सपना भी है।''[90]

मीनू की कहानियाँ स्त्री के मनोजगत में गहरे उतरकर उसके भावनात्मक द्वन्द्व, संवेदनात्मक चोटों और सर्जनशील संघर्षों का उद्‌घाटन करती है। स्त्री के आत्मसम्मान व मुक्ति के लिए संघर्ष करती हुई ये कहानियाँ समाज को अपने भीतर झाँकने की प्रेरणा देती है।

'बाड़ा' कहानी घरेलू स्त्रियों के मनोभावों को व्यक्त करती है। कहानी में तीन बहुए है और उनकी सास। जो एक–दूसरे से खुश नहीं है। सास परम्परावादी सोच की है और वह कहती है– ''निकम्मी बहुएँ .... एक–एक वक्त का खाना बनाती हैं तीनों....... फिर भी कहेंगी फुर्सत नहीं है .... बस अखबार पढ़ो, टी.वी. देखो और गप्पें लड़ाओ ..... सब्जी काटने को मैं बुढ़िया ..... और ये रोब ..... कैसे इतने बरस दबाकर रखा था ...... कभी चूँ तक नहीं की .... छोटी बहुओं को देख अब यह भी पैर पसारने लगी है। पढ़े लिखों की धौंस .... कहाँ जाओगी तुम सब? एक दिन बुलाऊँगी तुम्हारे बाप को कहूँगी ये लच्छन हैं तुम्हारी बेटियों को अरे कुछ सिखा के भेजना था।''[91] समझती है कि घर एक बाड़े की तरह हो गया है जिसमें जानवरों जैसे बंद हैं। जैसे जानवरों को

बाड़े में रहने की आदत हो जाती है वैसे ही उन सभी की हो गई है। रेवा तो सब कुछ यूँ ही सहन कर रही है लेकिन 'सुषमा' विद्रोह करती है– ''तरसती है दादियाँ अपने पोतों के लिए। एक में है कि सारा दिन चीखती रहेंगी– ''शोर मत करो, टी.वी. मत चलाओ, नीचे जाकर क्यूँ नहीं खेलते सारा दिन मेरे सिर पर पड़े हो .... जैसे तुम हो, वैसी तुम्हारी माँ है– राक्षस!'' इतनी नफरत मैंने कभी किसी से नहीं कि, भाभी। मेरे भीतर का सब कुछ सुखा दिया इसने नहीं है बच्चा आपके, ठीक किया। इन परिवारों को यहीं नष्ट हो जाना चाहिए।''[92]

दीपक शर्मा की 'मोहरा रस्सा' कहानी में पति, पत्नी और एक बच्चे को लेकर नये तेवर में पत्नी का विछोह देखने को मिलता है। कथा में एक तरफ पति है और दूसरी तरफ पत्नी। दोनों बच्चे को बीच में रखकर एक खिलौने के माध्यम से एक–दूसरे का प्रतिरोध करते हैं। पत्नी कहती है– ''स्कूल की दुनिया में बेशक हम एक जैसी क्षमताएँ रखते हैं, एक समान तनख्वाह पाते हैं, लेकिन घर के काम में आप मेरी बराबरी नहीं कर सकते। आप गैस नहीं जला सकते, सब्जी नहीं काट सकते, आटा नहीं सान सकते, चपाती नहीं बेल सकते, कपड़े पर लोहा नहीं कर सकते।''[93]

'जोंक' कहानी की 'मधुबाला' नौकरी करती है उसका पति पढ़ा–लिखा बेरोजगार है। मधुबाला के ऊपर घर की जिम्मेदारी है जैसे घर में बच्चों की व्यवस्था करना, खाना बनाना, घर की साफ–सफाई, बाजार से सब्जी लाना इत्यादि। इन सारे कामों के बोझ से वह झुंझला उठती है। कहती है– ''घर मधुबाला संभाले, नौकरी मधुबाला करे, बच्चों में संस्कार मधुबाला डाले, और रामजी गौतम एम.ए. द्वितीय श्रेणी कहीं किसी नुक्कड़ पर मित्रों के साथ बेरोजगारी, महँगाई, भ्रष्टाचार, आरक्षण की आलोचना कर रहे होंगे। यह नहीं होता कि कभी बच्चों की लिखावट पर ही थोड़ा–सा ध्यान दे दें।''[94]

'पलाश का फूल' कहानी की 'अपूर्वा' घर परिवार के नियमों को तोड़कर स्वतंत्र होना चाहती है। वह कुछ ऐसा बनाना चाहती है जो सिर्फ उसका हो वह कहती है–

''रोहित, मैं काम करना चाहती हूँ!''

''क्यों? पैसों के लिए.........।''

''नहीं, अपने लिये........।''

''काम नहीं है तुम्हारे पास ....घर सँभालो .... बच्चों का ख्याल रखो........।''[95]

अपूर्वा इससे भी आगे जाकर अपने स्व–अस्तित्व की बात करती है– ''रोहित, मैं कुछ करना चाहती हूँ, ऐसा जो सिर्फ मेरा हो, अपना। मेरे अस्तित्व की निरर्थकता मुझे खा रही है। इस घर की दरो–दीवारों से मुझे परायेपन की बू खाती है ....।''[96]

क्षमा शर्मा के 'रास्ता छोड़ो डार्लिंग' कहानी की केशा उन्मुक्त जीवन जीने में विश्वास रखती है। वह भोगवादी होने से समृद्ध है और अपने इसे इसी भोगवाद जो अपनी सहेली से बयां करती है– ''तुम एक आदमी को शरीर सौंपती दो और मैं पचास को। करते तो हम दोनों एक ही काम हैं? और मेरे पास वह सब कुछ है– बैंक बैलेंस, कार, ऊँचे संपर्क– जिनके लिए तुम जीवन भर तरस सकती हो।''[97]

'ऐ जिन्दगी तुझसे' स्त्री जीवन की घुटन, निराशा के बीच मानवीय मूल्यों को स्थापित करती यह कहानी प्राची के इर्द–गिर्द घूमती है। वह अपने वैवाहिक जीवन से असंतुष्ट है क्योंकि उसका पति उसके साथ वहशी जैसा व्यवहार करता है। अपनी व्यथा को अपनी सहेली शोभा से बताती है– ''क्या अश्लील कहती हूँ मैं .....'' ''यही कि मुझे राक्षस खा रहा है। रोज चूसता है मेरा खून........'' ''और ....'' ''यह भी कि .... रात और दिन लगातार– कोई मुझसे बलात्कार कर रहा है ..... मेरी टाँगों पर हमेशा चावल के मांडसा कुछ चिपचिपाता रहता है .... वह बूँद–बूँद मेरी आत्मा पर गिर रहा है ..... मुझे ऊबकाई आ रही है।''[98] उसका वहशी पति इस बिना पर तलाक मांग रहा है कि उसकी चीख सुनकर पड़ोसी भी सहम जाते हैं।

शोभा उसको समझाते हुए कहती है– ''प्राची, पुरुष स्त्री की देह, मन और आत्मा का मालिक ही तो होता है। स्त्री समर्पण करती है उसे .... तुझसे क्या माँगा

था तेरी देहहीन .....? उसका हक है इस पर, प्राची ..... सभी स्त्रियाँ अपने पति को देह समर्पित करती हैं।''[99] शोभा की सोच मध्यकालीन है लेकिन प्राची इससे प्रकट होना चाहती है। प्राची और उसके पति में झगड़ा होता है, इसी से उसका सिर दीवार से जा लगता है और वह हास्पिटल में भर्ती हो जाती है। जहाँ उसका अविनाश नाम के डॉक्टर के प्रति अनुराग हो जाता है ओर वह इसमें मुक्ति की कामना करती है।

'दूसरी कहानी' में ''नायिका का पति उसे केवल इसलिए तलाक दे देता है, क्योंकि उसने एक शारीरिक–मानसिक रूप से अविकसित बच्चे को जन्म दिया है और बाद में समाज भी उसके मातृत्व पर ऊँगली उठाता है। परन्तु वह इस उपेक्षा को सहते हुए भी अपने बच्चे का पालन–पोषण करती है।''[100]

इसी तरह ''वाइल्ड फ्लावर हाल'' कहानी भी इसी सत्य को उद्घाटित करती है कि पति के बिना रहना कितना जोखिम का कार्य है। समकालीन हिन्दी कहानी पति–पत्नी के संबंधों के तनाव व अलगाव रहने के निर्णय के पश्चात् स्त्री के संघर्ष व कठिनाइयों को नितांत मानवीय स्तर पर उद्घाटित करती है।

नमिता सिंह समकालीन हिन्दी कहानी को सशक्त हस्ताक्षर हैं। इनके कथा–संग्रह 'राणा का चौक' में साम्प्रदायिक और धर्म के अनेक पक्षों पर प्रकाश पड़ता है। नारी अस्मिता की पहचान कराने वाली कहानी 'बन्तो' उल्लेखनीय है। इसकी पात्र 'बन्तो' बदलते समाज के प्रतिनिधि के रूप में हमारे सामने आती है। बन्तो की सास जो बन्तो के शरीर की आवश्यकता को महसूस करती है, और उसे अपने दूसरे बेटे की समर्पिता के रूप में देखना चाहती है, तो दूसरी ओर बन्तो इस स्थिति से निपटने के लिए खुद को तैयार करती है और अपने आत्मविश्वास को जागृत करती है। पति की मृत्यु के उपरांत वह अपने देवर की पत्नी न बनकर बड़े प्रेम से उसे उसकी पत्नी के पास भेज देती है।

जयवन्ती डिमरी की कहानी 'अनाड़ी' की पात्र 'सुप्रिया' बौद्धिकता की शिकार है। इसी बौद्धिकता के चलते वह अपने आपको समाज से अलग कर लेती है वही उसे पद्मनाभ के रूप में अंधेरी गलियों में भरमाता है। पर इससे वह इस बात को समझ

पाती है कि औरत कभी बूढ़ी नहीं होती। उसका संघर्ष और सावधानी कभी समाप्त नहीं होती। इसके अतिरिक्त यह कहानी एक और दिशा में फोकस करती है, वह है– भारतीय समाज में पुरुष का स्थान कितना सेफ है। एक पुरुष बेझिझक अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों से संबंध बनाता है और स्वीकारता है– ''वह अपनी पत्नी का अन्य पूरुषों से शारीरिक संबंध स्वीकार नहीं कर सकता .... और ये भी उसकी भारतीय पत्नी ऐसा नहीं करेगी।''[101]

सुप्रिया अखिल से अलगाव के बाद पद्मनाभ के पास पहुँचती है और समझती है कि बौद्धिकता में लिपटी आदिम सच्चाई को और उसका 'प्लेटानिकल' समाप्त हो जाता है।

इस कहानी की मुख्य पात्र बन्तो है जिसका बाप शराबी–जुआड़ी है और इन बुरी आदतों के चलते वह जुएँ में सब हार जाता है। ''आग लगे नास पीटे। तेरे कीड़े पड़े। घर के डोर डांगर को भी भकोस जाएगा ..... सब पी जाएगा .....दुधारू भैंस खुलवा दी तूने ...... नरक में जाय सत्यानाशी ..... कुनबाखाने............।'' इन सबसे तंग आकर बन्तो की माँ बन्तो को उसके बाप के साथी बलवीरा को सौंप देती है और कहती है– ''बन्तो, ये बलवीरा ही अब तेरा मरद ऐ। तू उसकी बीर बनी से। जा बेटी .. ... आज से तेरा लिलार इसके साथ बँध गया।''[102]

एक दिन चोरी के माल के बँटवारे को लेकर बलवीरा की हत्या उसके ही साथियों द्वारा कर दी जाती है। बलवीरा का भाई सतवीरा है जिसका अभी–अभी गौना आया है। बलवीरा की माँ चाहती है कि बन्तो भी सतवीरा के साथ रहे। जिससे कुछ ऊँच–नीच होने से बचा जा सके। बन्तो की सास बन्तो को इस बात के लिए राजी करती है लेकिन बन्तो इसका प्रतिरोध करती है और सतवीरा के पास जाकर निडरता से कहती है 'जो वीर न जा। तेरी लुगाई तेरा इंतजार कर रही ए। मुँह के ताक रिया है मेरेर अय्या। जा ...... अपनी कुठड़िया में .... जो उसके पास।''[103]

''बन्तो आज के बदलते समाज की नारी पात्र के प्रतिनिधि के रूप में सामने आती है यह पुरुष प्रधान समाज में एक ऐसी नारी की कहानी है जो निर्णय लेने की क्षमता रखती है।''[104]

'जो इन पलों में नहीं है' स्वावलंबी स्त्री के स्वप्न, संघर्ष और संवेदनशीलता को सघनता के साथ उभारने के साथ ही साथ पितृसत्तात्मक व्यवस्था के तले दबी अपनी अस्मिता और स्वतंत्रता को दर्शाती है। परम्परावादी सोच के तौर–तरीके से विवाह का वह विरोध करती है। अमन को पति के रूप में स्वीकार नहीं कर पाती जो एक हाइली एजूकेटेड है लेकिन उसकी सोच परंपरावादी है। एक दिन अपने कॉलेज के दिनों की सहेली की मौत (दहेज के चलते जलाकर मारी गई) सुनकर वह दुखी है फिर भी उसके पति के द्वारा शारीरिक मांग को नकारकर उसका कोपभाजन बन जाती है। वह अपने अन्तर्मन में सोचती है– ''उन्होंने सिर्फ मेरी देह से प्यार किया। मेरे भीतर कितना कुछ था उन्हें देने के लिए लेकिन उन्हें लेना नहीं आया। वे मेरे पास वैसे ही आते रहे जैसे कोई पुरुष वेश्या के पास जाता है– उसकी देह के लिये, लेकिन मैं तो एक वेश्या से भी गई–गुजरी थी। वेश्या फिर भी स्वतंत्र होती है। चाहे तो किसी को मना कर सकती है और अगर देह देती है तो उसे बदले में पैसे तो हासिल होते हैं न!''[105] वह अपने वैवाहिक जीवन की विद्रूपता को व्यक्त करते हुए कहती है– ''वैवाहिक जीवन में पहला कदम रखते हुए 'प्रेम' शब्द मेरे लिए एक खुशबू था, लेकिन आज 'प्रेम' शब्द मेरे लिए एक गाली है जो देह से शुरू होता है और देह पर ही खत्म हो जाता है। रही बात विवास संस्था की तो मेरा मानना है कि विवाह सिर्फ मौज–मस्ती नहीं, बल्कि एक बहुत बड़ा दायित्व है और इसे मैंने भरसक निभाया है– पूरी निष्ठा के साथ। लेकिन आज मुझे एहसास हो रहा है कि मैंने यह दायित्व तो निभाया। मैंने पति, बच्चों, परिवार, समाज सबके बारे में सोचा, लेकिन अपने बारे में सोचना भूल गई।''[106]

चित्रा मुद्गल उन महिला कहानीकारों में अग्रणी हैं जिन्होंने स्त्री–पुरुष संबंधों के दायरे से बाहर निकलकर महानगरों में संघर्षरत नौकरीपेशा नारियों एवं झोपड़पट्टियों में घिसटते हुए निम्नवर्गीय लोगों के जीवन में झाँककर देखा है। उनके

कहानी संग्रह 'जहर–ठहरा हुआ, लाक्षागृह, अपनी वापसी तथा ग्यारह लम्बी कहानियों' में आज की बिखरी हुई जिन्दगी की तस्वीर देखी जा सकती है।

चित्रा मुद्गल की कहानी लकड़बग्घा में 'पछांहवाली' के पति निधन के पश्चात् उसके समस्त अधिकार और निर्णयों पर परिवार के लोग पाबंदी लगा देते हैं। पछांहवाली अपने जीवन में एक छोटा–सा निर्णय लेती है कि शिक्षा के अभाव के कारण जो कठिनाइयाँ उसे उठानी पड़ीं वह उसकी पुत्री को न उठानी पड़े। पढ़–लिखकर वह इस योग्य बन जाये कि यदि कोई अप्रिय घटना उसके जीवन में घटे तो वह भी सम्मानपूर्वक स्वालंबी होकर जीवन व्यतीत कर सके परन्तु पूरा परिवार उसके निर्णय के विरुद्ध एकजुट हो जाता है। लंबरदार उस पर रायफल तानकर खड़ा हो जाता है।

''निकल बाहर पछांहवाली। रायफल सीधी करते हुए लंबरदार दहाड़े...... ।''[107]

''समाज में विधवा स्त्री अन्य स्त्रियों द्वारा अनेक प्रकार के लांछनों का शिकार होती है और अपने परिवार को मेहनत व लगन से पालने के उसके साहस को सम्मान से न देखने के स्थान पर समाज उसे कुछ और ही नाम दे देता है। एक विधवा स्त्री के लिए सामान्य जीवनयापन के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। समाज की मानसिकता के बदले बिना इस बाधा को दूर करना लगभग असंभव है।''[108]

मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानी 'फॉस' कई स्तरों पर विद्रोह करती है। मान्यताओं के खिलाफ उसका बाप जो शराबी है और एक दिन शराब के नशे में अपनी बेटी के साथ बलात्कार करता है। जयदीप जो उसके बचपन का दोस्त है, जब वह फौजी बनकर वापस आता है तो यह कहानी गाँव की एक महिला से सुनता है। वह कहती है– ''बाईसा, अंतु जीजी रे लारे, मलिक रो बैवार ठीक कोनी। दारू रा नसा में वे कई भी कर सके। वगाने होस कोनी रयो है कि या बेटी है कि बैण।''[109] शराबी बाप की मौत पर शवयात्रा में शामिल होकर सनातनी मूल्यों के खिलाफ विद्रोह करती है– ''राम नाम सत्य है कि हल्की–हल्की उदास गूँज के साथ हल्का सलेटी शलवार–कुर्ता पहने, दुपट्टे को कमर में बाँधे अंतिमा अर्थी के आगे पानी भर मटकी लेकर चल रही थी,

जिसके तल में से बूँद–बूँद जल टपक रहा था। रास्ते भर सारा गाँव उसे हैरत से देखता रहा था।''[110] यह कहानी स्त्री की जटिल मुश्किलों और रिश्तों के दबावों एवं दुश्वारियों को व्यक्त करती है।

'फैसला' कहानी की 'इसुरिया' जो एक अनपढ़ महिला है। वह भी बसुमती की तरह ही अपने अधिकारों की बात करती है और लोगों की चीख–चीख कर बताती है कि हमारे भी कुछ अधिकार हैं। इन शब्दों में – ''ए ऽऽ सब जनी सुनो? सुन लो कान खोल के? बरोबरी का जमाना आ गया। अब ठठरी बँधे मरद मारा– कुटी करें, गारी–गरौज दे, मायके न भेजे, पीहर से रुपइया पइसा मँगवावें क्या कहते हैं कि दायजे की पीछे सतावें, तो बैन सूधी चली जाना बसुमती के ढिंग। लिखवा देना कागद करवा देना नठुओं के जेहल।''[111]

'पठार' कहानी में नीलिमा के उन्मुक्त सेक्स का वर्णन है। यह विवाहेत्तर भी है। उसके जैविक अति कामुक भावना से तंग आकर बलवीर अपने दुख की दास्ताँ भाभी अतीमा से बयान करता है। दोनों की आपस में बातचीत होती है– ''तुझे ताकत नहीं दिख रही, तो अपने घर में बैठे, काहे को पीछे पड़ी है। एक अच्छे भले इंसान को तबाह करने पर तुली है और मुझे तो यह ताज्जुब हो रहा ।है कि उसमें हथिनी सरीखी ताकत कहाँ से आ समायी है, इस उम्र में भी उस पर मस्ती छा रही है।''

''मस्ती तो छायेगी ही। मैंने तो उसे एक दिन सुना दिया कि थकता तो राही है, रास्ते का क्या होता है। तो हँस पड़ी बोली, तुम भी कैसी बातें करते हो।''[112]

प्रत्यक्षा की 'फुलपुर की फुलवरिया मिसराइन' दो भिन्न स्थितियों में रह रही दो स्त्रियों की कहानी है। हमीदन और फुलवरिया मिसराइन की कहानी। हमीदन विवाह के 12 वर्ष बाद भी संतान सुख से वंचित है और मिसराइन का पति शादी की पहली रात पहलवानी दिखाने के बाद से गायब है।

हमीदन मुख्तार की बीवी, शादी के बारह साल बीत जाने के बाद के बाद जब कोई संतान नहीं हुई तो उसकी अजमेर वाली बहन ने ख़त लिखा 'आ जाओ दरगाह पर मत्था टेक लो। पीर मुराद पूरी करेंगे। महीने भर रही, लौटते वक्त रास्ते से ही तबियत खराब, चक्कर पे चक्कर, उल्टी पे उल्टी घर पहुँची तो लस्तपस्त।' उसके जो बच्चा पैदा हुआ उसकी शक्ल न मुख्तार से मिलती न ही हमीदन से। बच्चे की शक्ल अजमेर की गलियों में घूमते एक लड़के से मिलती है। प्रो० पालीवाल कहते हैं– ''यदि नैतिकता का प्रश्न उठाना जरूरी हो तो हमीदन का यह निर्णय गलत है और हमीदन की अपनी परेशानियों और लांछनों को ध्यान में रखकर उसके निर्णय पर विचार किया जाय तो हमीदन सही है।''[113]

कहानी की दूसरी स्त्री पात्र फुलवरिया है जिसका विवाह रामअवतार नामक एक कुश्ती–दंगल में भाग लेने वाले, हनुमान भक्त तथा ब्रह्मचर्य पर जोर देने वाले से होती है। लेखिका न फुलवरिया के सुहागरात का चित्रण इस प्रकार किया है– ''खुसरू की फुलवरिया, रामअवतार मिसिर की नई ब्याही बनकर फूलपुर आ गयी। सुहागरात के समय रामअवतार मिसिर गोरी–गोरी, केले के थम्ब जैसी पीली सुबुक फुलवरिया को देखकर होश खो बैठे। उनकी हालत ऐसी थी कोई भी औरत उनको खुश कर देती ..... फुलवरिया घूँघट में सपने भरे लजाई सकुचाई बैठी थी। खुसरूपुर के एक मात्र सिनेमा हाल में ऐसे कई सुहागरात के फिल्मी दृश्य माँ–भाभी के साथ देख चुकी थी। पति के टूटूते देख हक्की–बक्की रह गयी कुछ क्षण। फिर दर्द का तेज आवेग हुआ, एक उबकाई सी आयी और मुँह से चीख निकल गयी।''[114]

इन दृश्यों से पत्नी पर बलात्कार जैसी घटना निकलकर आती है। सवाल यह है जो रामअवतार स्त्री देह का स्पर्श पाकर एक क्षण के लिए भी संयम नहीं रख पाये वे इतने निर्मोही क्यों हो गये? उस सुहागरात के बाद रामअवतार साधु की संगत करने लगे और गृह त्याग कर दिया। राम अवतार के गृहत्याग के बाद भी फुलवरिया के श्रृंगार में कोई कमी नहीं थी। यूँ कह सकते हैं रामअवतार के बिना भी फुलवरिया का जीवन खूब चल रहा था। फुलवरिया अपने घर में काम करने वाले नौकर की ओर आकर्षित होती है जो बहुत पहले से छुपकर उसके शरीर को देखता था। घर को

सँभालते हुए फुलवरिया को एक अदद आदमी की जरूरत थी। कहानी के अंत में निश्चित भाव से कहा गया है कि 'अब पता नहीं फुलवरिया का सपना पूरा हुआ कि नहीं'। वस्तुतः यह पूरी की पूरी कहानी ही असमंजस्य की स्थिति में है।

कमल कुमार की 'पार्टनर' कहानी में कुरूपता की वजह से विवाह में आने वाली कठिनाइयों को दर्शाया गया है। लड़के वाले उसी के सामने बेशर्मी से कहते हैं– ''हमें तो गोरी लड़की चाहिए थी।'' वह कई बार कह चुकी थी कि साफ क्यों नहीं कहते कि– ''लड़की काली है।'' उसका रंग साफ न होने के कारण लड़के वाले उसकी बहन को पसंद कर लेते हैं।'' घर पर सब अच्छा है फिर आपके लिए तो दोनों लड़कियाँ बराबर हैं। यह सुनकर उसका भीतर–बाहर पथरा गया था। शरीर की शक्ति चूक गई थी, वह खुशी के मौके पर भी विवाद की काली छाया से घिरी रहती थी।''[115]

रंग साफ न होन, कुरूप होना एक स्त्री के जीवन को किस हद तक प्रभावित कर सकता है कि इसे ही इस कहानी में अभिव्यक्त किया गया है। उसी की बहन का हाथ उसे देखने आये लड़के वाले माँगते हैं और माता–पिता के लिए यह चिंता का विषय हो जाता है कि बड़ी बहन के होते हुए छोटी बहन का विवाह पहले कैसे करें। यह बहुत सारे परिवारों में होने वाली सामान्य सी घटना है, जहाँ केवल थोड़े से रंग–रूप के अंतर को बड़ी गम्भीरता से लिया जाता है।

'हस्तक्षेप' की नीता उन चीजों को प्राप्त करने निकलती है जिनकी वह हकदार है। ''उसे सबसे पहले अपने भीतर की कुण्ठाओं से मुक्त होना है दृष्टि परिमार्जित करनी है– यानि सेक्त से पवित्र–अपवित्र होने की ग्रंथि से मुक्त होना है। पुरुष वर्जनाहीन जीवन जीकर कभी विसूरता नहीं कि व पतित हो गया। किसी को मुँह दिखाने लायक नहीं रहा– समाज में अब उसका कोई स्थान नहीं। स्त्री क्यों नहीं मुक्त होती इन फरेबी मर्यादाओं से, जिस दिन वह कुण्ठाओं से मुक्त होगी उसके सारे कष्ट कट जायेंगे।''[116] अतः नारी विरोध करती है कि कई पुरुष समाज में सामंती प्रवृत्तियों का प्रतीक बन रात–दिन देह सुख में लिप्त रहते हैं, वे इसलिए भी विरोध करती हैं कि पुरुष सच नहीं बोलते हैं, राहें निकालते रहते हैं। अपने दाम्पत्य जीवन में, पति के

निरपेक्ष, नीरस व ठण्डे व्यवहार के कारण, पत्नी अक्सर प्रतिक्रिया स्वरूप अन्यत्र उन्मुख होती है।

'सात फेरे' मध्यवर्गीय शहरी जीवन ठंडे पड़ गये नीरस जीवन को व्यक्त करती यह कहानी 'ज्योत्सना' और 'रजत' के माध्यम से बयान होती है। रजत ऑफिस गया हुआ है। इसी बीच खबर मिलती है कि लोकल ट्रेनों में बम–विस्फोट हो गया है और रजत के भी उसमें होने की संभावना है। ज्योत्सना सोचती है– ''प्यार था ही कब.... हाँ, अगर जिस्में की नजदीकियों को प्यार का जामा पहनाना चाहो तो और बात है। यहाँ भावात्मक लगाव को लकर भी संशय है और तुम मोहब्बत के नर्म, गुलाबी, एहसासात के भुलावों में हो। पति–पत्नी के रिश्तों में प्यार की गुंजाइश ही कहाँ होती है? अगर इंसान एक कुत्ता पालता है तो उसके साथ भी रहने की आदत हो जाती है।'' [117] ज्योत्सना इस सोच में गुम है कि यदि रजत मर गया हो तो वह अपनी जिन्दगी को फिर से प्लान करेगी। वह अपने प्रेमी जुनैद को भी याद करती है साथ ही उसके पति द्वारा बी.एड. और ब्युटीपार्लर खोलने को मना करने की बात भी सोचती है। एकाएक रजत कि जिंदा वापस आकर सामने खड़ा देख वह रोती है और रजत उसको अपने सही सलामत होने का आश्वासन दे रहा है।

'फैसला' कहानी की 'वसुमती' गाँव की प्रधान बन जाती है फिर भी वह कभी–कभार ही चौपाल में आती है। इस पर भी प्रधानपति रणवीर को उसका बाहर आना पसंद नहीं आता। वह कहता है– ''पंचायती चबूतरे पर बैठती तुम शोभा देती हो? लाज–लिहाज मत उतारो। कुल परम्परा का ख्याल भी नहीं रहा तुम्हें? औरत की गरिमा आँड़–मर्यादा से ही है। फिर तुम क्या जानो गाँव में कैसे–कैसे धूर्त हैं?''[118]

'पलभर का सच' कहानी की सविता एक बच्चे की चाहत में तड़पती संगीता के मायके जाती है। मायके में उसके जीजा द्वारा सविता समझ (उसकी बहन) संभोग का विरोध नहीं करती। ''सविता! सविता फुसफसाहट के साथ कोई आकृति उसके ऊपर झुकी जा रही थी। जीजा जी उसे बीवी समझ रहे थे, उसका मन हुआ कि जोर से

हँसकर उनका भ्रम तोड़ दे। किन्तु दूर कोने से अनागत शिशु की आवाज उस स्वर लहरी पर तैरती हुई उसे मुखर बना देती है। चारों तरफ फैली अँधेरे की चादर में सब कुछ एकाकार हो जाता है और संगीता पेट से रहती है और इस प्रकार की खबर वह अपने पति को जब देती है, तो वह कहता है– ''ऐसा कैसे हो सकता है?''[119]

'सच' कहानी में 'बिन्नी' जो केवल 10 वर्ष की थी जब उसके चचेरे भाई ने उसके साथ बलात्कार किया था। उस समय यह घटना अपनी माँ से शेयर नहीं करती बल्कि जब वह बड़ी हो जाती है तब अपनी माँ से कहती है– ''तुम्हें परेशान होने की कोई जरूरत नहीं मम्मी, वो हादसा गुजर चुका है, उसमें मेरी कोई गलती नहीं थी इसलिए मैं अपराध बोध से युक्त हूँ। इस देश में बलात्कारी के प्रति घृणा रखी जाती है। जिसके साथ बलात्कार हुआ, वह सबकी सहानुभूति पाती है।''[120] एक ओर बिन्नी बलात्कार की घटना को सहजता से लेती है लेकिन दूसरी तरफ उसे दुःख है कि पीड़ित स्त्री का अपराध न होते हुए भी उसे अपराधी सिद्ध किया जाता है। वह कहती है– ''हाँ मम्मी, मुझे पुरुष जाति से नफरत हो गयी। हम कहते हैं हमारे देश की संस्कृति पूज्य है पर लड़कियों के लिए वहाँ क्या समानता मिल सकी है? बलात्कार के बाद क्या कोई लड़की मुँह खोलने का साहस कर सकती है? दूसरों की तो बात ही छोड़ो, खुद उसके अपने ही उसे दोषी की नजर से देख उसका जीना हराम कर देते हैं।''[121]

''महानगर, जिसके बारे में स्थापित हो चुका है कि उसकी कोई आत्मा नहीं होती, उसका कोई चरित्र नहीं होता, वह अमानवीय होता है, इसमें अलग–अलग बड़े असंख्य संसारों का एक बेमेल जमाव होता है, जहाँ भीड़ में भी आदमी अकेला होता है, जहाँ जिंदगी सिर्फ 'शरीर' और 'अर्थ' के गणित पर टिकी होती है।''[122]

'विद्रोह' कहानी में परिवार नामक व्यवस्था में अकेली कमाने वाली नायिका समझ पाती कि किस तरह किस रूप में विद्रोह करें? ''वह नहीं समझ पाती कि किस तरह विद्रोह करें? केसे अपने मन को कुण्ठा से मुक्त करे और अपने शरीर से उदासी

की परत को खींचकर अलग करे? ..... वह साहस नहीं जुटा पाती कुछज्ञ कहने का। फिर वह कहे भी तो किस मुँह से, जबकि वह जानती है कि माँ और बाबूजी खुद उसके लिए वर ढूँढ़ते–ढूँढ़ते थक गये थे और अब जैसे उसके विवाह की बात ही भूल गये हों जैसे वह ही उन सबकी पिता हो और सब उसके बच्चे हो, माँ भी, बाबूजी भी और इन सबको पेट भरना उसका फर्ज हो गया हो।''[123]

''उनके विद्रोह का स्वरूप चाहे जैसा हो, पर वास्तव में वे विद्रोह जड़–व्यवस्था के बदलने के लिए ही करती हैं। अधिकारों के प्रति सजगता, संघर्षशील प्रवृत्ति और मुक्ति की कामना विद्रोह की आधारभूत विशेषतायें हैं।''[124]

सन्दर्भ ग्रंथ–सूची

---

[1] नारी विमर्श और हिंदी साहित्य, संपादक– डॉ. ऊषा रानी, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पृ० 93

[2] स्त्री विमर्श का यथार्थ, ममता कालिया, किताबवाले प्रकाशन, संस्करण 2015, पृ० 93

[3] स्त्री अस्मिता : साहित्य और विचारधारा, संपादक– जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह, आनंद प्रकाशन, कोलकाता, प्रथम संस्करण 2004, पृ० 195

[4] समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह, रेशमी रामदोनी, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2001, पृ० 78

[5] समकालीन हिंदी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह, रेशमी रामदोनी, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001, पृ० 29

[6] स्त्री विमर्श का कालजयी इतिहास, संपादक– डॉ. संजय गर्ग, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 20.14, पृ० 163–64

[7] हिंदी कहानी परंपरा और प्रगति, डॉ. हरदयाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005, पृ० 197–98

[8] स्त्री विमर्श विविध पहलू, कल्पना वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2011, पृ० 258

[9] हंस, जुलाई 2000, संपादक– राजेन्द्र यादव, पृ० 44

[10] हिंदी उपन्यास : सार्थक की पहचान, मधुरेश, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002, पृ० 155

[11] हंस अक्टूबर 1995, संपादक– राजेन्द्र यादव, पृ० 43

[12] स्त्री अस्मिता : साहित्य और विचारधारा, संपादक– जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह, आनंद प्रकाशन, कोलकाता, प्रथम संस्करण 2004, पृ० 258

[13] हंस, अक्टूबर 1992, संपादक– राजेन्द्र यादव, पृ० 45

---

[14] उपनिवेश में स्त्री : मुक्ति कामना की दस वार्ताएँ, प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2003, पृ० 45

[15] हंस, नवम्बर 1999, संपादक– राजेन्द्र यादव, पृ० 82

[16] नारी विमर्श और हिंदी साहित्य, संपादक– डॉ. ऊषा रानी, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पृ० 84

[17] हंस, नवम्बर 1992, संपादक– राजेन्द्र यादव, पृ० 16

[18] दलित चेतना : साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार, रमणिका गुप्ता, समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2001, पृ० 7

[19] हंस, संपादक– राजेन्द्र यादव, सितम्बर 1998, पृ० 45

[20] अंतिम दशक की हिंदी कहानियाँ : संवेदना और शिल्प, डॉ. नीरज शर्मा, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2011

[21] हिंदी कहानी परंपरा और प्रगति, डॉ. हरदयाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005, पृ० 197

[22] हंस, अप्रैल 1992, संपादक– राजेन्द्र यादव, पृ० 26

[23] नारी : उत्तरकथा, संपादन– राजेन्द्र यादव, अर्चना वर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002, पृ० 74

[24] हंस, अक्टूबर 1994, संपादक– राजेन्द्र यादव, पृ० 15

[25] नारी उत्तर कथा, संपादन–राजेन्द्र यादव, अर्चना वर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002, पृ० 198

[26] हंस, दिसम्बर 1997, पृ० 18

[27] मुस्कुराती औरतें, संपादक– शैलेन्द्र सागर, रजनी गुप्त, कहानी घर–बाहर, शैलेन्द्र सागर, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ० 194

[28] वही, पृ० 197

[29] वही, पृ० 207

[30] हंस, दिसम्बर 1997, संपादक–राजेन्द्र यादव, पृ० 40

[31] काश, मैं राष्ट्रद्रोही होता, राजेन्द्र यादव, संकलन एवं संपादन– बलवंत कौर, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ० 143

[32] हंस, दिसम्बर 1998, संपादक–राजेन्द्र यादव, पृ० 35

[33] अभिनव कदम, अंक 28, दिसम्बर 2012– मई 2013, संपादक– जय प्रकाश धूमकेतु, पृ० 263–64

[34] बहुवचन, अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिक, अप्रैल–जून 2013, संपादक– अशोक मिश्र, पृ० 86

[35] स्त्रियों की पराधीनता– जॉन स्टुअर्ट मिल, अनुवाद–प्रगति सक्सेना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2002, पृ० 28

[36] हंस, अगस्त 2000, संपादक– राजेन्द्र यादव, पृ० 61

[37] हंस, अक्टूबर 1995, पृ० 64

[38] उन्नीस प्रतिनिधि कहानियाँ, मिथिलेश्वर, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, संस्करण 2001, पृ०

[39] वही, पृ० 212

[40] वही, पृ० 214

[41] वही, पृ० 217

[42] काश, मैं राष्ट्रद्रोही होता, राजेन्द्र यादव, संकलन एवं संपादन– बलवंत कौर, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ० 206

---

[43] समकालीन हिंदी कहानी और अम्बेडकरवादी आंदोलन, दिनेश राम, अकादमिक एक्सेलेन्स प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2006, पृ० 85

[44] पुस्तकवार्ता, जनवरी–फरवरी 2015, अंक 56, संपादक– विमल झा, महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा, पृ० 41

[45] अंतिम दशक की हिन्दी कहानिया : संवेदना और शिल्प, डॉ० नीरज शर्मा, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2011, पृ० 9

[46] स्वामी नहीं, साथी की तलाश, प्रभा खेतान, हंस, जून 1997

[47] स्वातंत्र्योत्तर कथा लेखिकाएं, उर्मिला गुप्ता, पृ० 10

[48] समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह, रेशमी रामहोनी, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001, पृ० 78

[49] गुम होती गौरेया, कुसुम अंसल, रेमाधव पब्लिकेशन्स प्राइवेट लि., गाजियाबाद, प्रथम संस्करण 2008, पृ० 20

[50] वही, पृ० 20

[51] इक्कीसवीं सदी का पहला दशक और हिंदी कहानी, सूरज पालीवाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 30

[52] वही, पृ० 31

[53] वही, पृ० 34

[54] समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह, रेशमी रामदोनी, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001, पृ० 82

[55] हंस, जनवरी 1997, संपादक– राजेन्द्र यादव, पृ० 70

[56] हंस, मार्च 2000, संपादक– राजेन्द्र यादव, पृ० 22

[57] हंस, जून 1998, संपादक– राजेन्द्र यादव, पृ० 25

[58] हंस, फरवरी 1998, संपादक– राजेन्द्र यादव, पृ० 26

[59] हंस, जून 1994, पृ० 14

[60] हंस, जनवरी 1998, पृ० 30

[61] कब तक नचाएंगी राधा को रंगमहन में इक्कीसवीं सदी का पहला दशक और हिन्दी कहानी, सूरज पालीवाल, वाणी प्रकाशन, पृ० 83

[62] वही, पृ० 84

[63] समकालीन लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह, रेशमी रामदोनी, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001, पृ० 75

[64] अल्हड़ सपने और स्त्री जीवन, इक्कीसवीं सदी का पहला दशक और हिन्दी कहानी, सूरज पालीवाल, वाणी प्रकाशन, पृ० 38

[65] वही, पृ० 38

[66] वही, पृ० 39

[67] वही, पृ०

[68] श्रृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण 2015, पृ० 16

[69] सोने का बेसर, मेरी बात, मेहरून्निसा परवेज 1991, प्रथम संस्करण, सत्साहित्य प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली, पृ० 20

[70] मुक्ति के अनुपम राग की कामना, इक्कीसवीं सदी का पहला दशक और हिंदी कहानी, सूरज पालीवाल, वाणी प्रकाशन, पृ० 107

[71] वही, पृ० 105

---

[72] मुस्कुराती औरतें, संपादक– शैलेन्द्र सागर, रजनी गुप्त, कहानी इस जहाँ में हम, अल्पना मिश्र, कल्याणी शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ० 148

[73] वही, पृ० 157

[74] उपनिवेश में स्त्री, मुक्ति कामना की दस वार्ताएँ, प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2003, पृ० 27

[75] चमगादड़ें, मृणाल पाण्डे, कहानी संग्रह यानि कि एक बात थी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2002

[76] बोलने वाली औरत, ममता कालिया, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1998, पृ० 37

[77] वही, पृ० 8

[78] वही, पृ० 57–59

[79] वही, पृ० 57–59

[80] इक्कीस कहानियाँ, कुसुम अंसल, स्पीड ब्रेकर, पृ० 23–24

[81] महिला कहानीकार, प्रतिनिधि कहानियाँ के आवरण पृष्ठ से डॉ० पुष्पपाल सिंह

[82] प्रतिनिधि कहानियाँ, 83, मात्र एक मकान, कुसुम अंसल, पृ० 51

[83] वही, पृ० 51

[84] समकालीन हिंदी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह, रेशमी रामदोनी, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 237

[85] हंस, मार्च 2000, पृ० 28

[86] हंस, दिसंबर 1998, पृ० 55

[87] टुकड़ा–टुकड़ा आदमी, उसकी कराह, मृदुला गर्ग, पृ० 123

[88] वही, पृ० 62

[89] दलित चिंतन का विकास : अभिशप्त चिंतन से इतिहास चिंतन की ओर, डॉ० धर्मवीर भारती, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ० 97

[90] दलित चेतना : साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार, रमणिका गुप्ता, समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2001, पृ० 26

[91] मुस्कुराती औरतें, संपादक– शैलेन्द्र सागर, रजनी गुप्त, कहानी 'बाड़ा– जया जादवानी कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ० 90

[92] वही, पृ० 93

[93] वही, कहानी मोहरा रस्सा, दीपक शर्मा, पृ० 108

[94] हंस, अप्रैल 1997, संपादक– राजेन्द्र यादव, पृ० 36

[95] अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है, जया जादवानी, पृ० 17

[96] वही, पृ० 18

[97] हंस, जुलाई 1994, पृ० 29

[98] मुस्कुराती औरतें : संपादक– शैलेन्द्र सागर, रजनी गुप्त, कहानी 'ऐ जिन्दगी तुझसे– कुसुम भट्ट' कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ० 164

[99] वही, पृ० 164

[100] समकालीन कहानी और उपेक्षित समाज, डॉ० श्रीमती प्रेम सिंह, डॉ० रिम्पी खिल्लन, श्री नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 116

[101] हंस, मार्च 1995, पृ० 68

[102] नई सदी की पहचान : श्रेष्ठ महिला कथाकार, संपादक– ममता कालिया, लोक भारती प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 2009, पृ० 66

---

[103] वही, पृ० 104

[104] अंतिम दशक की हिन्दी कहानियाँ : संवेदना और शिल्प, डॉ० नीरज शर्मा, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृ० 64

[105] मुस्कुराती औरतें, संपादक– शैलेन्द्र सागर, रजनी गुप्त, कहानी इस जहाँ में हम, अल्पना मिश्र, कल्याणी शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ० 181

[106] वही, पृ० 181–82

[107] लकड़बग्घा, जगदम्बा बाबू गाँव आ रहे हैं : चित्रा मुद्गल, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1992, पृ० 101

[108] समकालीन कहानी और उपेक्षित समाज, डॉ० श्रीमती प्रेम सिंह, डॉ० रिम्पी खिल्लन, श्री नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 113

[109] मुस्कुराती औरतें, संपादक– शैलेन्द्र सागर, रजनी गुप्त, कहानी इस जहाँ में हम, अल्पना मिश्र, कल्याणी शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ० 141

[110] वही, पृ० 144

[111] हंस, अप्रैल 1993, पृ० 37

[112] हंस, जनवरी 1996, पृ० 24

[113] हमारा समाज और स्त्री जीवन का यथार्थ, इक्कीसवीं सदी का पहला दशक और हिंदी कहानी, सूरज पालीवाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 74

[114] वही, पृ० 75

[115] पार्टनर, कमल कुमार, वर्तमान साहित्य, कहानी विशेषांक, जनवरी–फरवरी, 1998, पृ० 270

[116] हस्तक्षेप, जगदम्बा बाबू गाँव आ रहे हैं, चित्रा मुद्गल, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ० 78

[117] मुस्कुराती औरतें, संपादक– शैलेन्द्र सागर, रजनी गुप्त, कहानी इस जहाँ में हम, अल्पना मिश्र, कल्याणी शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ० 185

[118] ललमनियां, मैत्रेयी पुष्पा, पृ० 11

[119] हंस, नवम्बर 1993, पृ० 61

[120] हंस, जनवरी 1998, पृ० 32

[121] हंस, जनवरी 1998, पृ० 32

[122] हिंदी आलोचना और आज की कहानी, संपादक– विद्याधर शुक्ल, चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ० 75

[123] विद्रोह, कहानी संग्रह, 'सोने का बसेर', मेहरून्निसा परवेज 1991, प्रथम संस्करण, सत्साहित्य प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली, पृ० 171

[124] समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह, रेशमी रामदोनी, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 152